

अनुभवप्रकाश.



प्रकाशक

लखमीचंद वेणीचंद, कुईवाडी.



कोल्हापूर—जैनैंद्र प्रेस.

किंमत ६ आणे.

अनुभवप्रकाश.



॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

अनुभवप्रकाश.

दोहा—गुण अनन्तमय परमपद । श्रीजिनवर भगवान् ॥

ज्ञेय लक्ष्य है ज्ञानमें । अचल सदा निजस्थान ॥ १ ॥

परमदेवाधिदेव परमात्मा परमेश्वर परमपूज्य अमल अनुपम आनन्दमय अल-
ण्डित भगवान् निर्वाणनाथकों नमस्कार करि अनुभवप्रकाश ग्रन्थ करों हों, जिनके
प्रसादतैं पदार्थका स्वरूप जानि निज आनन्द उपजै ॥ प्रथम यह लोक षड्द्रव्यका
बन्या है । तामैं पञ्चद्रव्यसौं भिन्न सहजस्वभाव सच्चिदानन्दाद्यनन्तगुणमय चिदानन्द
है । अनादिकर्मसंयोगतैं अनाद्यशुद्ध होय रखा है । तातैं परपदमें आपा मानि परभाव
कीये । तातैं जन्मादि दुःख सहे है । ऐसी दुःखपरिपाटी अपनी अशुद्धचिन्तवनेतैं पाई
है । जो अपने स्वरूपकी संभार करै तो एकछिनमें सब दुःख विलय जाय । जैसा कहू

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान २ ॥

सासंता आनन्दमय परमपद है, ताकौ पावै, ताकी संभारके करतही स्वरूपप्राप्ति होय है, यह उपाय दिखाइये है। येही परिणाम उलटि परमै आपा मानि स्वरूपका विस्मरण करि रखा है। येही परिणाम सुलटि स्वरूपकौ आपा मानि परविस्मरण करै, तौ मुक्ति-कामिनीका कन्ध होवे ॥

ऐसे परिणाममें कबु कलेश तौ नहीं। ये परिणाम कौन करै? ताका समाधान, अनादि आविद्यामें पडा है। मोहकी गांठि निवड पडी है। आत्मा परका एकत्वसन्धान होय रखा है। जैसे कोई पुरुष अफीमके अमलकौ चढ्या है, वह दुःख पावै है, परि छूटि न सकै, काहेतैं बहुत चढ्या? छूटे सुख है, कलेश नाही, परि वाइडि आवै सो लेही ले। तैसे पर मो वध्या है, छूटे सुख है, परि न छूटे है, अनादिसंयोग छूटै सुख है, परि झूठी दुःख माने है। याके मतवेको प्रज्ञाछिनी आत्मपरके एकत्वसन्धानमें डारै, चेतना अंश अपना जानै, जामैं जडप्रवेश नाहीं। कैसे जानै? सो कहिये है ॥

यह परमैं आपा जानै है, सो यह ज्ञानी निज बानिगी है । इस निजज्ञानबानिगीकौ बहुत संत पिछानि पिछानि अजर अमर भये, सो कहनेमात्रही न ल्यावै, चित्तकौ चेतनामैं लीन करै, स्वरूप अनुभवका विलास सुखनिवास है, ताकौ करै । सो कैसें करै सो कहिये हैं ॥

निरन्तर अपने स्वरूपकी भावनामैं मग्न रहै, दर्शनज्ञानचेतनाका प्रकाश उपयोगद्वारमैं दृढ भावै । चित्परिणतितैं स्वरूप रस होय है । द्रव्य गुण पर्यायका यथार्थ अनुभवना अनुभव है । अनुभवतैं पञ्च परमगुरु भये होहिंगे । सो प्रसाद अनुभवका है । अनुभव आचरणकौ अरिहंत सिद्ध सेवै हैं । अनुभवमैं अनन्तगुणके सकल रस आवै है सो कहिये हैं ॥

ज्ञानका प्रकट प्रकाश अनन्तगुणकौ जानै । ज्ञान विशेषगुणकौ परिणति परणवै, वेदै, आस्वाद करै । तहां अनुपम आनन्द फल निपजै ऐसैही दरसनकौ परिणति

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ४ ॥

परणवै, वेदै, आस्वाद करै सुखफल निपजै । यही रीति सब गुणकौ परणवै, वेदै, आस्वादै आनन्द अनन्त अखण्डित अनुपमरस लीये उपजै । ताँ सब गुणका रस परिणतिके द्वार अनुभव करवै आया । ऐसीही द्रव्यकौ परणवै, वेदै, आस्वादै, आनन्द पावै । तब परिणतिद्वारि द्रव्य अनुभव भया । अनुभवका रस गुणपरिणति एकरस भये होय है । वस्तुका स्वरूप है । सो गुण चेतनाका सङ्क्षेपमात्र वर्णन कीजिये है ॥

सकलगुणमै ज्ञान प्रधान है । काहेतै? ज्ञान विशेष चेतना है । ज्ञान सबका ज्ञाता है । सूक्ष्म न होता तौ इन्द्रियग्राह्य होता । ताँ सूक्ष्मकरि ज्ञानकी सिद्धि सत्ता-गुणविना सूक्ष्म सासता न होता । वीर्यगुणविना सत्ताकी निष्पत्तिसामर्थ्य कहाँ पाईये? । अगुरुलघुविना वीर्य हलका भारी भये जड़ताकौ धरता । प्रमेयगुणविना अगुरुलघुका प्रमाण कहाँ पाईये? अप्रमाण भये कौन मानता? वस्तुत्वविना प्रमाण किसका कहिये?

अस्तित्वविना वस्तुत्व किसके आधार कहिये? प्रदेशत्वविना अस्तित्व किसका निरूपिये? प्रभुत्वविना प्रदेशप्रभुता कहाँतै रहती? विभुत्वविना प्रभुत्व सर्वमै कैसे व्यापता? जीवत्वविना विभुत्व अजीव होता, चेतनाविना जीवत्व कहाँ वर्तता? ज्ञानविना चेतनका विशेष जान्या न परता, दर्शनविना सामान्यविशेषज्ञान न रहता, सर्वज्ञताविना दर्शन कौन जानता? सर्वदर्शित्वविना ज्ञान कौन देखता? चारित्र्यचेतनाविना दर्शनज्ञानकी थिरता कहाँ रहती? परिणामात्मकत्वविना चिदचिद्विलास कहाँतै करता? अकारणकार्यत्वविना परकार्य भये, निजकार्यको अभाव होता। असंकुचितत्वविना अविनाशी चेतनाविलास संकोच न आवता। त्यागोपादानशून्यत्वविना ग्रहणत्याग लगा रहता। अकर्तृत्वविना कर्मका कर्त्ता होता। अभोक्तृत्वविना परभाव भोगवता। असाधारणविना चेतनाचेतनका भेद न परता। साधारणविना कोई पदार्थ सत् होता, कोई असत् होता। तत्त्वविना वस्तु स्वरूप न धरता। अतत्त्वविना परका तत्त्व

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ६ ॥

आवता । भावविना स्वभावका अभाव होता । भाव भावविना अतीतका भाव अनागतमें न रहता । भावाभावविना परिणमन समयमात्र न संभवता । अभावभावविना अभाव अभावविना अतीतमें कर्म अभाव था, सो अनागत अभावमें ऐसा न होता । सर्वथा कर्ताविना निजकर्मका कर्ता न होता । कर्मविना स्वभावकर्मका अभाव होता । स्वरूपमें आप समर्पण स्वरूपका साधन था सो न होता । सम्प्रदानविना परिणति-अधिकरणविना सबका आधार न होता । अपादानविना आपतें आपकरि आप न होता । विना उपजता । अखण्डविना खण्डितता पावता । विमलविना मल होता । एकविना अनेक होता । अनेकविना गुण अनेकका अभाव होता । नित्यविना अनित्य होता । अनित्यविना षड्गुणी वृद्धिहानि न होय । जब अर्थक्रियाकारकस्वभावकी सिद्धि न

होय । भेदविना अभेद द्रव्य गुण होय । अभेदविना एक वस्तु न होय । अस्तिविना नास्ति होय । नास्तिविना परकी अस्तिता होय । साकारविना निजाकृति न होय । निराकारविना पराकार धरि विनाश पावै । अचलस्वभावविना चल होय । ऊर्ध्वगमन-स्वभावविना उच्चपद न जान्यौ परै । इत्यादि अनंत विशेषण ज्ञानी अनुभव करै । सो निजजानि कैसेँ होय ? सो कहिये हैं ॥

प्रथम अनादि परमैं अहं ममरूप मिथ्याका नाश करै । पीछै पररागरूप भाव विध्वंस करै । जब परराग मिटै तब वीतराग होय । परप्रवेशका अभावभाव भया, तब स्वसंवेदरूप निजजानि होय । अथवा अपने द्रव्य गुण पर्यायका विचार करि निजपद जानै । अथवा उपयोगमैं जानरूप वस्तुकों जानै । अनन्तमहिमाभण्डार सार अवि-कार अपारशक्तिमण्डित मेरा स्वरूप ऐसा भाव प्रतीतिकरि करै । ध्यान धरै निश्चल होय यह जानि जानै । निजरूपजानहीकों अनुपपदका सर्वस्व जानै । इस स्वरूपकी

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ८ ॥

जानिविना परकी मानिकरि संसारी दुःखी भये । सो परकी मानि कैसें भिटै ? सो कहिये हैं ॥

भेदज्ञानतैं परनिजका अंश अंश न्यारा न्यारा जानै । में उपयोगी, मेरा उपयोगत्व ग्रन्थ गावैं हैं । मैं देखौं जानौं हों । यह निश्चय ठीक कीये आनन्द बढे । मैं निजमें मेरी करी है । न करौं तो न होय मानि, मेरी परमें मैं करी मानि, अब भ्रमका विनाश निजसम पाये होय है । सो निजसम कैसें पाईये ? सो कहिये हैं ॥

मेरा अनन्तसुख मेरे उपयोगमें है । सो मेरा उपयोग तौ सदा मैं धरौं हों । मैं उपयोगको भूलि अनुयोगमें अनादि स्त भया सुखस्थानक चेतना उपयोग भूल्या सुख कहाँतैं होय ? अब मैं साक्षात् उपयोगप्रकाश ठावा (योग्यस्थान) कीया । काहेतैं ? अहं नर ऐसी मानि, नरशरीर जड मैं तौ न होय, मेरे उपयोगतैं भई है ।

सो ऐसा मानिका करणहार मेरा उपयोग अशुद्धस्वांगही धरि बैठा है। जैसे कोई एक नटवा वरदका स्वांग लिया है, पूछे है, आपा भूल्या है, मैं नरकी पर्याय कब पावौंगा? झूठेही पूछे है, नर ही है। भूलतैं यह रीति भई है। तैसें चिदानन्द आपा भूल्या है, परमैं आपा जान्या है, अपनी आप भूलि मेटे, सदा उपयोग धारि आनन्दरूप आप स्वयमेवही बन्या है। विनायतनतैं निजनिहार नहीं कार्य है। निजश्रद्धा आये निज अवलोकन होय है। यह श्रद्धा काहेतैं होय है सो कहिये हैं ॥

प्रथम सकललौकिकरीतितैं पराङ्मुख होय, निजविचारसन्मुख होय, कर्मकन्दराविष छिप्या है चिदानन्द राजा। नोकर्म प्रथमगुफा, दूजी द्रव्यकर्मगुफा, तीजी भावकर्मगुफा प्रथम नोकर्मगुफामैं परिणति पैठि कि, हमारा राजा देखै, तहां उसकौ कछु न दीसै, चक्रति होय रही, तब फिरिनै लगी, तब श्रीगुरुनैं कहा कि, तूं कहा दूटे है? तब वह कहने लगी, मेरे राजाकौ देखौ हौं सो न पाया। तब श्रीगुरुनैं कहा तेरा राजा यहांही है,

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान १० ॥

मति फिरै यहाँतैं । तीसरी गुफा है, तहां वसे है । हाथकी डोरी इस गुफातक आई है । सो यह डोरी उसके हाथकी हलाई हाले है । जो वह न होय तौ डोरी आपसैं न हाले है । तातैं विचारि इस शक्ति या डोरीकी अनसूत चली जाना । कर्ममें देखि इसकी क्रिया डोरीकौ कौन हलावै है ? द्रव्यकर्मगुफा अंदरी प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभाग वाहीके निमित्ततैं नाव पन्या है । वाकी परिणति भई जैसी जैसी वर्गणा बंधी वहांभी उसकी बणाई सत्तासौ द्रव्यकर्म नाव उसके भावोंके निमित्ततैं नानाकर्मपुद्गलनैं नाव पाया । भावकर्मगुफामैं राग द्वेष मोहका प्रकाशमें छिप्या स्वरूप रहे है । वह प्रकाश तेरे नाथका अशुद्ध स्वांग है । तामैं तू खोजि, भय मति करै । निःशंक जानि यह राग द्वेष मोहकी डोरीके साथि जाइ खोजि, जिस प्रदेशतैं उठी सोही तेरा नाथ है । डोरीकौ मति देखै । जिसके हाथमें डोरी तिसकौ लागि तुरति मिलैगा । अपनी ज्ञानमहिमाको छिपाय बैठा है । तू पिछानि । यह गुप्तज्ञान भया तौऊ नाथ छिप्या नहीं । चेतना-

प्रकाशरूप चिदानन्द राजा पाय सुख पावैगी । निजशर्मका उपाय कहा । यह निजसुख तौ निजउपयोगमें कहा । दुर्लभ क्यों भया है? सो कहिये हैं ॥

यह परिणामभूमिकामें मोहमदिरा पीय अविवेक मल्ल उन्मत्त होय विवेक-मल्लकौ जीति जयथंभ रोपि ठाढा (खडा) भया है जोरावर । ताँतैं आपकी सुखनिधिका विलास न करणै दे । विवेकमल्लका जोरा भये अविवेक हणया जाय । तब निज निधि विलसिये । पररुचि खोटा आहार सेवतैं मिथ्याज्वर भई । तब विवेक निर्बल भया । ताँतैं स्वआचार पारा श्रद्धा बूढीके पुटसौँ सुधान्या । ताका सेवन करै, तब विवेकमल्ल मिथ्याज्वर मेढि सबल होय अविवेककौ पछारै । तब आनन्द निधिका विलास होय । स्वआचार कहा ॥ श्रद्धा कैसेँ हो सो कहिये हैं ॥

इस अनादिसंसारमें परविचार अनादि कीया । मेरी ज्ञानचेतना अशुद्ध भई । अब स्वआचार पारा सेवन करिये तौ, अविनाशी पद भेटिये । मैं कौन हौं? मेरा

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान १२ ॥

स्वरूप कहा ? कैसे पाइये ? प्रथम पद अपनेका उपयोगका प्रकाश है । दर्शनज्ञान उपयोग चारित्र्य उपयोग । दर्शन देखता है, ज्ञान जानता है, चारित्र्य परिणामकरि आचरिता है । ऐसा ज्ञेयका देखना जानना आचरणा अनादि कीया अपने विशुद्ध-पदमें उपयोग न दीया । अतीन्द्रियसुखके लाभविना रीता रह्या । अनन्ते तीर्थङ्कर भये तिनहूँ स्वरूप शुद्ध किया, अनन्तसुखी भये । अब मोकौभी ऐसे स्वरूप शुद्ध करना ॥

मुनिवर जन निरंतर स्वरूपसेवन करे हैं । ताँ अपना त्रैलोक्यपूज्य सबतैं उच्च-पद अवलोकिक कार्य करना है । कर्मघटामें मेरा स्वरूपसूर्य छिप्या है । कछु मेरा स्वरूप मेरे स्वरूपकं हनि न सकै । कर्मघटाकरि हण्या न जाय । आवन्या है । वारैही वारै घटाका जोर है । भूल्या । भूलि मेदि जबही मेरा स्वपद ज्यौका त्यों बण्या है ॥

जैसे कोई रत्नद्वीपका नर था। तहां रत्नके मंदिर थे। रत्नसमूहमें रहे था। परख (कमरमें बांधनेका कटिसूत्र) न जानै था। और देशमें आया, कणगर्तमें हरिन्मणि लगी थी। एकदिन सरोवर रत्नानकौ गया। जौहरीने देख्या। हन्या पाणी इसकी मणिप्रभातें सरोवरका भया। तव उसपासि एक नग ले राजासमीप उस नरकों ले गया। कोडि मंदिर भरे एती दीनार दिवाई। तव ओ नर पिछताया। मेरा निधान मैं न पिछान्या। तैसे अपना निधान आपसमीप है। पिछानतही सुखी होय है। मेरा आत्मा तातें ज्ञानका धारी चिदानन्द है। मेरा स्वरूप अनन्तचैतन्यशक्तिमण्डित अनन्तगुणमय है। मेरे उपयोगके आधीन बण्या है। मैं मेरे परिणाम उपयोग मेरे स्वरूपमें धन्यौंगा। अनादिदुःख भेटौंगा। सुगमराह स्वरूप पावनेका है। दृष्टिगोचर करनाही दुर्लभ है। सो संतोनें सुगम कर दिया है। उनके प्रसादतैं हमोनें पाया है ॥

सो हमारा अखण्डविलास सुखनिवास इस अनुभवप्रकाशमें है। बचनगोचर नाहीं,

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान १४ ॥

भावनागम्य है । यह मेरा ज्योतिःस्वरूपका प्रकाश प्रगट इस घटमें प्रकाशता है । छिप्या नहीं, गोप्य कैसा मानौं? छती वस्तुकों अछती कैसें करौं? छती अछती न होती है । पीछे झूठी छतीकों अछती मानी थी । तिसका अनादि दुःख फल भया था । शरीरकों आपा कैसें मानिये? यह तो रक्तवीर्यतें भया सात धात जड विजातीय विनश्वर पर, सो मेरी चेतना यह नाही । ज्ञान वर्ण वर्गणा विजातीय स्वरूपकों वर्ण अचेत बंधक विनश्वर रसविपाकहीन है, सो मेरी नाही । विभाव स्वभाव मलिन करे कर्मउदयतें भया, मेरा नाहीं । मेरा चेतनापद में पाया । ज्ञानलक्षणतें लक्ष्य पिछानि स्वरूपश्रद्धातें आनन्दकन्दकी केलीकरि सुखी हौं । सो आनन्दकन्दकी केली स्वरूप श्रद्धातें कैसें होय? सो कहिये है ॥ अनन्तचैतन्यचिन्हकों लिये अखण्डितगुणका पुञ्ज पर्यायका धारी द्रव्य ज्ञानादिगुणपरिणति पर्यायअवस्थारूप वस्तुका निश्चय भया ॥

ज्ञान जाननमात्र, दर्शन देखवेमात्र, सत्ता अस्तिमात्र, सो वीर्य वस्तुनिष्पन्न

सामर्थ्यमात्र, केवल ऐसा प्रतीत्यभाव रुचिभावकी आस्तिक्यताश्रद्धान श्रद्धा कहिये । तिसरै उपजी आनन्दकन्दमें केलिकरि सुखी हों । जान्या आनन्द ज्ञानानन्द, स्वरूप देखै आनन्द सो दर्शनानन्द, परिणया आनन्द चारित्रानन्द । ऐसैं सब गुणानन्द, तिसका मूल निजस्वरूप आनन्दकन्द । तिसकी केलि स्वरूपमें परिणति रमावणी । तिसरै सुखसमूह भया है । और इसतैं ऊंचा उपाय नांही । भव्यनकौं शिवराह सो-हली (सहज) यह भगवंतनैं बताई है । भगवन्तकी भावनातैं सन्त महन्त भये । मैभी याही भावनाका अवगाढ थंभ रोप्या है । सम्यग्दृष्टीकै ऐसा निरन्तर अभ्यास रहै ॥ कर्मअभावतैं ज्ञान स्वरसमण्डित सुखका पुंज प्रगटै तब कृतकृत्य होय है । इस आत्मका स्वरूप गोप्य हो रह्या है । साक्षात् कैसें होय ? भावना परोक्षज्ञानकरि बढाई है । सो कैसें सिद्धि होय सो कहिये हैं ॥

जैसें दीपकके पांच पडेदे हैं । एक पडदा दूरि भये, झीणा बारीक उद्योत

भया । दूजा पडदा दूरि भया, तव चढता प्रकाश भया । तीजा गये चढता भया । चउथा गये अधिक चढता भया । ऐसैं ज्ञानावरणके पांच पडदे हैं । मतिज्ञानावरण गये स्वरूपका मनन कीया ॥ अनादि परमन था, सो मिट्या । अनन्तर ऐसी प्रतीति आई, जैसे कोई पुरुष दरिद्र है, कजको स्वौका है, उसकै चिन्तामणि है, तव काहूने कछ्वा, इस चिन्तामणिके प्रभावतैं निधि विस्तारि रही है, काहूको फल दीया था, सो अब तुमहु निधितौ ल्यौ । साक्षात्कार भये सब फल पावहुगे । प्रतीतिमें चिन्तामणि पायेकासा हर्ष भया है । ऐसैं मतिज्ञानी स्वरूपका प्रभाव एकेदेशहीमें ऐसी जागा केवलज्ञानकी शुद्धत्वप्रतीतिद्वार आया सो अशुद्धत्व अंशहु अपना न कल्पे है । स्वसंवेदन मतिज्ञानकरि भया है । ज्ञानप्रकाश अपना है । ऐसैं श्रुतमें विचारै, मैं मनन कीया ॥

सो कैसा हौं ? ज्ञानरूप हौं, आनन्दरूप हौं । ऐसैं व्यापि ज्ञानमें स्वसंवेदनपरि-

णतिकर तौ प्रत्यक्ष है । ज्ञान अविधिमनःपर्ययके जानवैतैं एकदेशप्रत्यक्ष । काहेतैं सर्वा-
वधिकरि सर्व वर्गणा परमाणुमात्र देखै, तातैं एकदेशप्रत्यक्ष । मनःपर्ययहू परमनकी
जानै, तातैं एकदेशप्रत्यक्ष है । केवल सर्वप्रत्यक्ष है । अपना जानना ज्ञानमात्र वस्तुमें
जो प्रतीति भई, तातैं सम्यक् नाम पाया । ज्ञानमात्र वस्तु तौ केवलज्ञान भये शुद्ध,
जहांतक केवल नहीं तहांतक गुप्त, केवलज्ञानमात्र वस्तुकी प्रतीति प्रत्यक्ष करिकरि
स्वसंवेदन बढा है ॥

जघन्यज्ञानी कैसें प्रतीति करै? सो कहिये हैं ॥ मेरा दर्शनज्ञानका प्रकाशप्रदेश
मेरेतैं उठै है । जानपना मेरा मैं हौं । ऐसी प्रतीति करता आनन्द होय सो निर्विकल्प-
सुख है । ज्ञान उपयोग आवरणमें गुप्त है । जानिमें आवरण नहीं । काहेतैं? जेता
अंश आवरण गया, तेता ज्ञान भया, तातैं ज्ञान आवरणतैं न्यारा है, सो अपना
स्वभाव है । जेता ज्ञान प्रगट्या तेता अपना स्वभाव खुल्या, सो आपा है । इतना

विशेष आवरणकों गयेहूँ परमै ज्ञान जाय, सो अशुद्ध। जो जेता अंश जिनमै रहै, सो शुद्ध। ताँतै गुप्त केवल है। परि परोक्षज्ञानमै प्रतीति निरावरणकी करिकरि आनन्द बढ़ाईये। ज्ञानी शुद्धभावनातैं शुद्ध होय, यह निश्चय है। 'या मतिः सा गतिः' इति वचनात्। अपना स्वरूप साक्षात् कैसेँ होय? सो कहिये हैं॥

प्रथम निर्मलत्वभावतैं संसारके भाव अधो कैसेँ करें सो कहिये हैं। दृश्य-मान जो सब रूपी जड, तामैं ममत्व न करना। काहेतैंभी जड तामैं आपा मानै सुख कहा? शरीरादि जड तामैं आपा मानै सुख कहा? अर राग द्वेष मोह भव भाव, असा-ताभाव, तृष्णाभाव, अविश्रामभाव, अस्थिरभाव, दुःखभाव, आकुलभाव, असा-अज्ञानभाव याँतैं हेय हैं॥ आत्मभाव, ज्ञानमात्रभाव, शान्तभाव, खेदभाव, ताभाव, अनाकुलभाव, आनन्दभाव, तृप्तिभाव, निजभाव उपादेय हैं॥

आत्मपरिणतिमैं आत्मा है। मैं हौं ऐसी परिणतिकरि आपा प्रगटै। आपामैं

परिणति आई मैं हौंपणाकीं मानि स्वपदका साधन है । मैंमें परिणाम में कहे हों । मैंमें परिणामौनै स्वपदकीं आस्तिक्यताकरि स्वपदपरिणामविना ठावा योग्य स्थान न होय । कायचेष्टा नहीं । वचनउच्चारणा नहीं । मन चिन्तवन नहीं । आत्मपदमें आपकी मग्नता स्वरूपविश्राम, आनन्दरूप पदमें स्थिरता चिदानन्द, चित्परिणतिका विवेक करना । चित्परिणति चिदमें रमै, आत्मानन्द उपजै । मनद्वार विवेक होय परि मन उरै रहै । मन पर है ज्ञान निजवस्तु है । सो ऐसै विचारतैं दूरि रहे है । काहेतैं ? परमात्मपद गुप्त है । ताकी मन व्यक्त भावना करत संकै है । काहेतैं ? परमात्मभावना करत करत परमात्मपद नजीक आवै, तब परमात्माके तेजतैं मन पहल्यौही मरि निवै (निवृत्त होय) है । काहेतैं ? सूरिमाका तेजतैं कायर विनासंग्रामही मरै । सूर्यके तेजतैं अंधकार पहल्यौही नाश होय जाय, तैसें जानियौ ॥

चिदानन्द भावनातैं चित्परिणति शुद्ध होय । चित्परिणति शुद्ध भये चिदानन्द

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान २० ॥

शुद्ध होय है। अनात्मपरिणाम भेदि आत्मपरिणाम करनाही कृतकृत्यपणा है। योगी-
श्वरभी इतना करे हैं। प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि याहीके निमित्त हैं।
स्वरूपपरिणाममें अनन्तसुख भया। निजपद आस्तिक्यता भई। अनुपपदमें लीनता
भई। एक स्वरस भया, शुद्ध उपयोग भया। अनुभव सहजपदका भया। महिमा
अपार आपपरिणामकी है। परिणाम आपके कीये विना परमेश्वर परपरिणामतैं गोता
खाय है। अपने परिणाम स्वरूपानन्दी भये, परमेश्वर कहाया। ऐसा प्रभाव आत्म-
ज्ञानपरिणामका है। अपूर्वलाभ अविनाशीपदका भया परिणमनतैं। सो परिणाम कैसे
स्वरूपमें लागै? सो कहिये हैं ॥

परपराङ्मुख होय वारंवार स्वपद अवलोकनिके भाव करै। दर्शन ज्ञान चारित्र्य
चेतनाका प्रकाश ठावो करिकरि स्वरूपपरिणति करै। आत्मज्योति अनात्मसौ भिन्न
अखण्डप्रकाश आनन्दचेतनास्वरूप चिद्विलासका अनुभवप्रकाश परिणामकरि प्रकाशै।

परिणाम जातैं उठ्या तामैं परिणाम लगावै । ज्ञानवारैं परिणाम न करै । परिणाम रङ्गचेतना अङ्ग अभङ्गमें अन्तरङ्ग लीन भया करै । अमरपुरीनिवास निजबोधके विकासतैं ठहै । निश्चय निश्चल अमल अतुल अखण्डित अमिततेज अनन्तगुणरत्नमण्डित ब्रह्माण्डको लखैया । ब्रह्मपद पूर्ण परमचैतन्यज्योतिःस्वरूप अरूप अनुप त्रैलोक्यभूप परमात्मरूप पद पाय पावन होय रहै । सो अनुभवकी महिमा है ॥

यथार्थज्ञान, परमार्थनिधान, निजकल्याण, शिवस्थानरूप भगवान् अम्लान-सुखवान् निर्वाणनिधि निरुपाधि निजसमाधि साधिye आराधिye । अलख अज आनन्द महागुणवृन्द धारी अवकारी सब दुःखहारी बाधारहित माहित सुरस रससहित निरंशी कर्मको विध्वंसी, भव्यको आधार, भवपारको करणहार, जगत्सार, दुर्निवाग्दुःख चूरै । पूरै पद आप भवताप पुण्यपापकौँ मिटायकै, लखाय पद आतम दरसाय देत चिदानन्द, सदा सुखकन्द निरफंद लखावै, अविनाशी पद पावै, लोकालोक झलकावै, फेरि

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान २२ ॥

भवमें न आवै, सब वेद गुण गावै । ताहि कहां लौं बतावै ? वैनगोचर न आवै । यह परम तत्त्व है, अतत्त्वसौं अतीत जामैं नांहि विपरीत करणी, भवदुःखनकी भरणी, हितहरणी अनुसरणी अनादिकीही मोहराजानैं बनाई । जगजीवनको भाई, दुःखदाई ही सुहाई, या अज्ञान अधिकारि, जातैं लगी बहु काई । ज्ञानरीति उरि आनी । विपरीत करणको भानी । साधकता साधि महा होइ । निजध्यान आनन्द सुधाको ढूँह पान । मोक्षपदको निदानी इदानीही समयमें स्वरसी वशी भये हैं । इन्द्रियचोर कसी, काय निरताय निहान्यो पद परमेश्वरस्वरूप अघटघटमें । व्यापक अनुप चिद्रूपको लखायो । भ्रमभावको मिटायो । निज आपतत्व पायो । दरसायो देव अचल अभेद देव । सासतीको निवासी सुखरासी भवसौं उदासी हो लहै । बाहरि न वहै । निजभावहीको चहै । स्वपदका निवास स्वपदमें है । बहिरङ्गसंगमें छूटि छूटि व्याकुल भया जैसें मृग वासको ढूँहै, कहूं परजायगां न पावै, तैसें पद आपको परमें न पावै ॥ मोहके विकारतैं आपा

न सूझे । सन्तनके प्रतापतैं गुण अनन्तमय चिदानन्द परमात्मा तुरंत पावै ॥ परपद आप जहांताई तहांताई सरागी भया व्याकुल रहै । ज्ञानदृष्टिसौ दर्शनज्ञानचारित्रिकौ एक पदस्वरूप अवलोकन करतही पर मानिकी तुरत हानि होय । रागविकार मिटतही वीतरागपद पावै । तब अनाकुल भया अनन्तसुख रसास्वादी होय आपा अमर करै ॥ जैसें कोई राजा मदिग पीय निन्द्य स्थानमें रति मानै, तैसें चिदानन्द देहमें रति मानि रखा है । मद उतरै राजपदका ज्ञान होय राजनिधान विलसै, स्वपदका ज्ञान भये सच्चिदानन्द सम्पदा विलसै ॥

कोई प्रश्न करै, ज्ञान तौ जानपणारूप है, आपको क्यौ न जानै ? ताका समाधान, जानपणा अनादि परसौ व्यापि परहीका हो रखा है । अब ऐसा विचार करै, तैं शुद्ध होय । यह परका जानपणाभी ज्ञानविना न होय । ज्ञान आत्माविना न होय । तौतैं परपदका जाननहारा मेरा पद है । मेरा ज्ञान मैं हौं । परविकार पर है । जहां जहां

जानपणा, तहांतहां में ऐसा दृढभाव सम्यक्त्व है। सो सुगम है, विषम मानि रखा है। मोहमद वाच्यो ज्ञान अमृत पीय उतरि ब्रह्मपदकों सँभारि, डारि भवखेद, भेद पाय निजसों, अभेद आपपदकों पिछानि, त्यागि परवाणी, जाणि चिदानन्द, मोह मानि भानिकै, गुणकों ग्राम अभिराम सुखधामरूप सोही है स्वरूप। सोही भावमोक्षको उपाय उपेयकों साथै, शुद्ध आत्म आराधै। योही शिवपंथ निर्ग्रन्थ वहू साधि साधि, समाधिकों पाय, परमपदकों पहुँचै। अपना चेतनाप्रकाश मोहविकारकों पाय, मैला भया। भेदज्ञान जडचेतनका निखारा करै। ताकों उरमें धरि करि निजज्ञानका अभ्यास वारंवार सार अविकार अपना अखण्डरूप जानि अनुभव उर आनि महामोह हठ भानि स्वरूपरस अपने स्वभावमें है। तिस स्वभावकों निज उपयोगमें ठावा करै। स्वरूपकी उपयोगशक्ति कर्ममें गुप्त भई तौ कहा शक्तिकों अभाव मानियै ॥

जैसे काहूको पुत्र घरमें है, बाजारमें काहूनें बूझ्यो, तौ कहै हमारे पुत्र है।

अभाव न कहै। व्यवहारमेंहू यह रीति है। छतैकों अनछतो न करै। चिदानन्द तेरो अचिरज आवतु है। दर्शनज्ञानशक्ति छती करि अनछती राखी है। जैसे लोटनजडीकों (जटामांसी जिसको बिछीलोटन कहते हैं) देखि बिछी लोटै है, तैसे मोहतैं संसारभ्रमण है। नै कहूं इतैं स्वरूपमें आवै तो त्रिलोकको राज्य पावै। सो तो दुर्लभ नाही ॥ जैसे नर पशुस्वांग धरै तो पशु न होय, नरही है। तैसे आत्मा चौरा-सीके स्वांग करै तौऊ चिदानंदही है। चिदानंदपणो दुर्लभ नाही ॥ जैसे कोई काठकी पूतरीकों सांची नारी मानि वाकों बुलावै, चाहि करै, वाकी सेवा करै, पीछै जानै काठकी, तब पछितावै। तैसे जडकी सेवा करै है। अज्ञानी भया जडमें सुख कल्पै है। ज्ञानी होय जब झूठ मानि तजै ॥

जैसे मृग मरीचिकामें जल मानै है, तैसे परमें आपा मानै है। तातैं सांचे ज्ञानतैं वस्तु जानौ तबही भ्रम भिटै। वांस्वार सार सांचो उपदेश श्रीगुरु कहै हैं।

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान २६ ॥

आपहू जानै है। अविद्याको आवरण है ताकरि झूठको सांच मानि रख्यो है। त्रिबक
(तीन जगहतैं वांकी ऐसी रस्सी) जेवरीमें सर्प बिकाल नाहीं, तैसें ब्रह्ममें अविद्या
ऐसी धिठौही पकरी है। जोरावरी ठीकरीकौ रुपयो चलावै सो न चालै। अपनी भूलि
न तजै तौ अपनी हांसी खलकमें आप करावै। कै देखो अनन्तज्ञानको धनी भूलि
दुःख पावै है। हांसीके भये जन सरमिंदो होय। फेरि हांसीको काम न करै। याकी
अनादिकी जगत्में हांसी भई है। लाज न पकरै है। फेरि फेरि वाही झूठी रीतीकौ पकरै
है। जाकी बातहूके कीये अनुपम आनन्द होय, ऐसो अपनो पद है। ताकौ तौ न ग्रहै।
परवस्तुकी ओर देखतही चौरासीको बंदीखानो है, ताकौ बहोत रुचिसेती सेवै है। ऐसी
हठरीति विपरीति रूपकौ अनुपमानि मानि हर्ष धरै है। जैसे साँपकौ हार जानि हाथ
चालौ तौ दुःख होयही होय तैसें रुचिसेती परसेवनतैं संसारदुःख होयही होय ॥

जैसे एक दृष्टिबन्धवालो नर एक नगरमें एक राजाके समीप आय रह्यो । केतेक दिनपीछे राजा मूवो । तब वा नरने राजाको मूवो न जनायो । राजाको तो बहुत उंडो गाडि माटी दे, ऊपरि बेमालुम जायगां करि दृष्टिबन्धसौ काठको राजा दरबारमें बैठायो । दृष्टिबन्धसूं सबको सांचो भासै । जब कोई राजाको बूझै, तब वो नर जुबाव दे, तब लोक जानै, राजा बोलै है । ऐसो चरित्र दृष्टिबन्धसौ कीयो । तहां एक नर वनकी बूटी सिरपरि टाँगि आयो, उस बूटीके वलतै वाकी दृष्टि न बंधी । तब वह नर लोकको कहनै लाग्यो, रे कुबुद्धि जन हौ ! काठको प्रत्यक्ष देखिये है । तुम याको सांचो राजा जानि सेवो हो, धिक्कार है तुमारी ऐसी समझिको । तैसे ये संसारी सब इनकी दृष्टि मोहसो बंधी, परको आपा मानि सेवै है । परमें चेतनाका अंशहू नाहीं । ज्ञान जाके भयो, सो ऐसे जानै है, ये संसारी कुबुद्धि जडमें आपा करि मानै हैं । दुःख सहै हैं । धिक्कार इनकी समझिको ! झूठ हठ दुःखदायक जानि सेवै हैं !!

जैसे काहूँको जन्म भयो, जन्मतैही आँखि परि, चामडीको लपेटौ चल्थो आयो माहिसूँ आँखिकौ प्रकाश ज्यौँको त्यौँ बाह्य चर्म आवरणसौ आपकौ न दरसे । जब कोऊ तबीब मिल्यो, तानै कही, याकै माँहि प्रकाश ज्योतीरूप आँखि सारी है । वानै जतनकरि चर्मको लपेटौ दूरि कीयो, तब शरीर आपकौँ आपही देख्यौ, औरभी दरसै लाग्यौ । याप्रकारि अनादि ज्ञानदर्शन नैन मुद्रित भये चले आये आप स्वरूप न देख्यौ । जब श्रीगुरु तबीब (नेत्रवैद्य) मिले, तब ज्ञानावरण दूरि करणको उपाय बतावतही याकै श्रद्धान करि दूरिही भयो । तब आपणौ अखण्ड ज्योतिःस्वरूप पद आप देख्यो, तब अनन्तसुखी भयो ॥

जेवरीमैं साँप नही, सीपमैं रूपो नही, भाडलीमैं (मृगतृष्णा) जल नही, काचमन्दिरमैं दूजो स्वान नही, मृगबोरैं बास नही, नलनीको सूवो काहूँने पक्यौ नहि, वानराकी मूठी काहूँ पकरी नहि, सिंह कूवामैं दूजो नहीं, ऐसेँ कोऊ

दुजो नही, आपहीकी भूलि झूठी, तातैं आप दुःख पावै है। दुजो मानि मानि दुःख पावै है। सांच जानै सदा सुखी होईयै ॥ यह आत्मा सुखके निमित्त अनेक उपाय करै है। देश देश फिरै, लक्ष्मी कमाय सुख भोगवै। अथवा परीषह अनेक सैह, परलोक सुखनिमित्तका निधान निजस्वरूपकौ न जानै। जानै तौ तुरत सुखी होय ॥

जैसे सब जनकी गांठडीमें लाल हैं, वै सब मसकती होय रहे हैं। जो गठडी खोलि देखै, तौ सुखी होय। अन्धले तौ कूपमें परै अचिरज नहीं। देखता परै तो अचिरज। तैसे आत्मा ज्ञाता द्रष्टा है, अरु संसारकूपमें परै है, यह बडा अचिरज है। मोह ठगनै ठगोरी इसके सिर डारी, तिसतैं परघरहीकौ आपा मानि निजघर भूल्या है, ज्ञानमन्त्रतैं मोह ठगोरीनैं उतारै, तव निजघरकौ पावै। बारवार श्रीगुरु निजघर पाय-वेको उपाय दिखावै है। अपने अखण्डित उपयोगनिधानकौ ले अविनाशी राज्य

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ३० ॥

करि । तेरी हरामजादगीतें अपना राजपद भूलि कौड़ी कौड़ीकौ जांच कंगाल भया है । तेरा निधान ढिगही था, तैं न संभाल्या । तातें दुःखी भया ॥

जैसे चांपा (नामका) गवाल धतूरेकौ पीय उन्मत्त भया मैं चांपा नाहीं, चांपाके घर पीछे ठाढ़ होय हेला दीया, चांपा चरि है ? तव उसकी नारीनैं कहा, तू कौन है ? तव चेत भया मैं चांपा हौ । तैसें श्रीगुरु आपा बताया है । पावै ते सुखी होय । कहाँलौ कहिये ? यह महिमानिधान अम्लान अनूपद आप वण्या है, सहज सुखकन्द है, अलख अखण्डत है, अमिततेजधारी है ॥ दुःखद्वन्द्वमैं आपा मानि अति आनन्द मानि रखा है । अनादिहीका सो यह दुःखकी मूल भूलि जवही मिटै, श्रीगुरुवचन सुधारस पीवै । चेत होय परकी ओर अवलोकन मिटै । स्वरूप स्वपद देखतही तिहूँ लोकनाथ अपना पद जानै । विख्यात वेद बतावै हैं ॥

नटवा स्वांग धरे नाचै है । स्वांग न धरे पररूप नाचना मिटै । ममत्वतें पररूप

होय होय चौरासीका स्वांग धरि नाचै है । ममत्व भेटि सहजपदकों भेटि थिर रहै, तौ नाचना न होय । चंचलता भेटे चिदानन्द उधरै है, ज्ञानदृष्टि खुलै है । नैक स्वरूपमें सुथिर भये गतिभ्रमण भिटै है । तौतैं जे स्वरूपमें सदा स्थिर रहैं, ते धन्य हैं ॥

अपनी अवलोकनिमें अखण्ड रसधारा वर्षै है, ऐसा जानि, निज जानि, पर भेटि, यह मैं सुखनिधान ज्योतिःस्वरूप परमप्रकाशरूप अनुपपदरूप स्वरूप इस आकाशवत् अविकारपदमें चिद्विकार भया, परसंयोगतैं । इहां तौ परके

अवकाश न था । कैसैं अनादि ठहण्या ? तहां कहिये हैं ॥

नकखानमें कनक चिरहीका गुप्त है । तैसैं आत्मा कर्ममें गुप्त अनादिहीका है । अनादितैं अशुद्ध उपयोग अशुद्धता लगी है, सो देखि । कैसैं लगी है,

॥

ध मान माया लोभ इन्द्रिय मन वचन देह गति कर्म नोकर्म धर्म अधर्म

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ३२ ॥

आकाश काल पुद्गल अन्यजीव जीतनेक परवस्तु हैं तितने आपकरि जानिये है। सो मैही हों, मै इनका कर्त्ता हों, यो मेरे काम हैं, “मै हों सो ये हैं, ये हैं सो मै हों” ऐसे परवस्तुकों आपा जानै, आपकूं पर जानै, तब लोकालोककी जाननेकी शक्ति सर्व अज्ञानभावकूं परणई है। सोई जीवको ज्ञानगुण अज्ञानविकार भया। यौही जीवका दर्शनगुण था। जेते परवस्तुके भेद हैं, तिनकों आपकरि देखै है, ये मै हों, आपा परमै देखै है, आपाकौ पर देखै हैं। लोकालोक देखनेकी जेती शक्ति थी, तेती सर्व शक्ति अदर्शनरूप भई। यौकरि जीवका दर्शनगुण विकाररूप परणम्या। अर जीवका सम्यक्त्वगुण था, सो जीवके भेदनकों अजीवकी ठीकता करै है। चेतनकों अचेतन, अचेतनकों चेतन, विभावकों स्वभाव, स्वभावकों विभाव, द्रव्य अद्रव्य, गुण अगुण, ज्ञानकों ज्ञेय, ज्ञेयकों ज्ञान, आपकौ पर, परकौ आप यौहीकरी और सर्व विपरीतिकौ ठीकता आस्तिक्य भावकों करै है। यौ जीवका सम्यक्त्व गुण मिथ्यारूप परणम्या। और जीव

स्वआचरण गुण था, जेतीक परवस्तु है तिसी परकौँ स्वआचरणकरि कीया करै, परविषै तिष्ठ्या करै, परहीकौँ ग्रह्या करै, अपनी चारित्रगुण सब शक्ति परविषै लागि रही है, यौँ जीवका स्वचारित्रगुण विकाररूप परिणमै है ॥

अवर इस जीवका सर्व स्वरूप परिणमनेका बलरूप सर्व वीर्यगुण था, सो निर्वल रूप होय परिणम्या स्वरूपपरिणमनेका बल रहि गया निर्वल भया परिणम्या । यौँकरि जीवका वीर्यगुण विकाररूप परिणम्या ॥ अवर इस जीवका आत्मस्वरूप रस जो परमानन्द भोगगुण था, सो परपुद्गलका कर्मत्व व्यक्त साता असाता पुण्यपापरूप उदय परपरिणामके बहुभांति विकार चिद्विकार परिणामहीका रस भोगव्या करै रस लीया करै, तिस परमानन्द गुणकी सर्वशक्ति परपरिणामहीका स्वाद स्वाद्या करै । सो परस्वाद परम दुःखरूप । यौँकरि जीवका परमानन्दगुण दुःखविकाररूप परणम्या ॥ यौँहीकरि इस जीवके अवर गुण ज्यौँज्यौँ विकारी भये हैं, त्योंत्यों ग्रन्थान्तरतैं जानि लेने ॥

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ३४ ॥

इस जीवके सर्व गुणहीके विकारकौ चिद्विकार नाम सङ्क्षेपसू कहना ॥ गुण गुणकी अनन्ती शक्ति कही सत्ताकी है शक्ति अनन्तगुणमें विस्तरी । सब गुणकी आस्तिक्यता सत्तातैं भई । सत्तातैं सासता सबकौ राख्या । अनन्तचेतनाका स्वरूप असत्ता होता तौ विच्छक्तिरूप चेतना अविनाशी महिमा न रहती । सच्चिदानन्द-विना अफल भये किस कामके ? तातैं सच्चिदानन्दरूपकरि आत्मा प्रधान है । अरूपी आत्मप्रदेशमें सर्वदर्शनी सर्वज्ञत्व स्वच्छत्व आदि अनन्तशक्तिका प्रकाश है, ते उपयोगके धारी अविकारी कर्मत्वकरि आवै, सङ्कोचविस्तार शरीराकार भये । आत्मा आकाशवत् कैसैं सङ्कोचविस्तार धरै ? पुद्गल संकुचै विस्तै, तौ काष्ठ पाषाण घटते बढ़ते होय । सो चेतनाविना न बढै । चेतनही बढै घटै, तौ सिद्धके प्रदेशका विस्तार होय कै घटि जाय, सोभी नाही । जडचेतन दोन्यौ मिले संकोच विस्तार है । परदेशमें सब गुण कहे हैं । परि संसार अवस्थातैं मोक्षमार्गकी चटि न भई । तहां सम्यग्द-

शनज्ञानचारित्र मोक्षमार्ग कहा । इनकी जेती जेती विशुद्धि होत भई, तेता मोक्षमार्ग भया ॥

निश्चयमोक्षमार्ग दोयप्रकार, सविकल्प निर्विकल्प । मैं “अहं ब्रह्म अस्मि” ऐसा भाव आवै निर्विकल्प वीतराग स्वसंवेदन समाधि कहिये । लोकालोक जाननेकी शक्ति ज्ञानकी, स्वसंवेदन जेता भया, तामैं स्वज्ञानविशुद्धताके अंश होत भये । सो ज्ञान सर्वज्ञशक्ति मैं अनुभव कीया । जेता ज्ञान भया शुद्ध, तेता अनुभवमैं सर्वज्ञानकी प्रतीतिभाव वेदना ऐसा भया । सर्वज्ञानका प्रतीतिभावमैं आनन्द बढ्या । ज्ञान विमल अधिक होत भया । ज्ञानकी विशुद्धताकौं ज्ञानके बलका प्रतीतिभाव कारण है । ज्ञान परोक्ष है । परपरिणतिके बल आवरणके होतैभी उस स्वसंवेदनमैं स्वजातिक सुख भया, ज्ञानस्वरूपका भया । एकदेश स्वसंवेदन सर्व स्वसंवेदनका अङ्ग है । ज्ञानवेदनामैं वेद्या जाय है साक्षात् मोक्षमार्ग है । स्वसंवेदन ज्ञानीही जानै है । स्वरूपतें परिणाम बार भया,

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ३६ ॥

सोही संसारस्वरूपाचरणरूप परिणाम सोही साधक अवस्थामें मोक्षमार्ग, सिद्धि अवस्थामें मोक्षरूप है। जेता जेता अंश ज्ञानबलतें आवरण अभाव भया, तेता तेता अंश मोक्ष नाम पाया। स्वरूपकी वार्ता प्रीतिकरि सुणै, तौ भावी सुक्ति कही। अनुपम सुख होय अनुभव करै, तिनि की महिमा कौन कहि सकै?

जेता स्वरूपका निश्चय ठीक भावै, तेता स्वसंवेदन होय एक भये, तीनोंकी सिद्धि है। गुप्त शुद्धशक्ति सिद्धिसमानमें परिणति प्रवेश करै। ज्यों ज्यों शुद्धताकी प्रतीतिमें परिणति थिर होय, त्यों त्यों मोक्षमार्गकी शुद्धि होय। ज्यों कोई अधिक कोस चालै तब नगर नजीक आवै, त्यों शुद्धस्वरूपकी प्रतीतिमें परिणति अवगाढ गाढ दृढ होय, मोक्षनगर नजीक आवै। अपनी परिणति खेल आप करि आप भवसिन्धुतें पार होय। आप विभावपरिणतिमें संसार विषम करि राख्या है। संसार मोक्षकी करणहारी परिणति है। निजपरिणति मोक्ष, परपरिणति संसार। सो यह सत्स-

झूतें अनुभवी जीवनिके निमित्ततैं निजपरिणति स्वरूपकी होय, विषम मोह मिटे, परमानन्द भेटे । स्वरूप पायवेका राह संतोंनैं सोहिला (सरल) कीया है ॥

चौरासी लाख योनि सरायका फिरनहारा कबहू कहुं धिरूप निवास न कीया । जबतक परमज्योति अपनैं शिवधरकौं न पहुँचै, तबतक कार्यभी न सरै । कहा भया जो तपी जपी ब्रह्मचारी यति आदि बहुत भेष धरै, तौ तातैं निज अमृतके पीवनेतैं अनादि भ्रम खेद मिटे । अजर अमर होय तत्त्वसुधा सेवनेका मार्ग कहा ? सो कहिये हैं ॥

अपनैं चिदानन्दस्वरूपकौं अवलोकि अनुभव करि । कैसैं ? सकल अविद्यातैं मुक्ति तत्त्वकी कौतूहली होय । निजानन्द केलि कलाकरि स्वपदकौं देखि । अनात्मका सङ्ग फिरि न रहै अनादिमोहके वशतैं । निज हितअहितमें भेदज्ञानतैं ज्ञानचेतनका अनुभव करि अनादि अखण्ड ब्रह्मपदका विलास तरै ज्ञानकटाक्षमें है ॥

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ३८ ॥

अज्ञानपटल जब भिटै, सद्गुरुवचन अञ्जनतैं पटल दूरि भये ज्ञाननयन प्रकाशै, तब लोकालोक दरसै । ऐसा ज्ञान ताकी महिमा अपार, अनेक मुनि पार भये । ज्ञानमय मूर्तिकी सूरतिका सेवन करि करि अपने सहजका ख्याल है । परपरचेमैं विषम है । सहज बोध कलाकरि सुगम, कष्टकेशतैं दूरि है । कोहतैं ? अफीम खाये विषकी लहरी छुस्त चढै । अमृतसेवनतैं छुस्ततृप्ति हो सुख पावै । तैसें कर्मसंक्लेशमें शान्त पद नहीं । अनन्तसुखनिधानस्वरूप भावनाके करतही अविनाशी रस होय, ता रसकौ संत सेय आये । तूं ताकौ सेय । श्रेयपदरूप अनूप ज्योतिःस्वरूप पद अपनाही है । अपनै परमेश्वरपदका दूरि अवलोकन मति करै । आपहीकौ प्रभु थाप्या, जाकौ नेक यादि करि, ज्ञानज्योतिका उदय होय, मोह अन्धकार विलय जाय, आनन्दसहित कृतकृत्यता चित्तमें प्रकटै । ताकौ बेगि अवलोकिक, आन ध्यानता निवारि विचारिके संभारि, ब्रह्मविलास तेरा तोमैं है । यातैं कहा अधिक ? जो, याकौ छोडि तूं परकौ ध्यावै

व्यारि वेद भेद लहि, गहि स्वरूप सुखरूप तेरी भावनामें अविनाशी रस चोवा चूने है। सो भावनाकरि भ्रमभाव भेट, तेरी भावनाही झूठेही भव बनाया है। ऐसा बदैकल स्वभाव कल्लोलके प्रगट होतैही मिटै है ॥

देखि, तूं चेतन है। जड अजान है। तैं अजानमें आपा मान्या, अशुद्ध भया, तेरी लैर अजान न परै है। तूं अपने पदतैं ईधैंकों (इधरको) मति आवै। तेरा जड कुछ पछा न पकरै है। अनाहिक (व्यर्थही) बिरानी वस्तुकों अपनी करि झूठी हौस करै। यह हमैं भोगसुख भया, हम सुखी हैं। झूठी भ्रम कल्पना मानि मोद करै है। किछुभी सावधानीका अंश नाही। यह कोई अचिरज है, तिहूं लोकका नाथ होय अपने पूज्यपदकों भूलै। नीच पदमें आपा मानि विकल होय व्याकुलरूप भया डोलै है ॥

जैसे कोई एक इन्द्रजालका नगरमें रहे। तहां इन्द्रजालीके बश हुवा इन्द्रजा-

लके हाथी, घोर, नर, सेवक, स्त्री सब; तिसमें काहूँको हुकम करै है। सेवक आय सलाह करै, स्त्री नृत्य करै। हाथी चढ़ै। घोडा दौडावै। इन्द्रजालमें सांचि जानै। विकलता धरि कबहुं काहूँके वियोगतैं रोवै। दुःखी होय छाती कूटै। कबहुं काहूँका लाभ मानि मोद करै। कबहुं शृङ्गार बनावै। कबहुं फौज देखै। सब कहै इन्द्रजाल झूठा है, उनमें रंच सांच नाहीं। ऐसैं देव, नर, नारक, तिर्यक्के शरीर जड हैं। चेतनका अंश नाहीं, अमतैं शृङ्गारै। खान पान चोवा (अर्क चूआ) लगावनादि अनेक जतन करै। झूठीमें मोद मानि मानि हरखै। मूवैसो जीवता सगाई करै। कार्य कैसें सुधारै?

जैसें थान हाडको चावै, अपने गाल गल मसौडैका रक्त उतरै, ताकौं जान भेला स्वाद है! ऐसैं मूढ आप दुःखमें सुख कल्पै है! परफंदमें सुखकन्द सुख मानै! अग्निकी ज्वाल शरीरमें लगै, तब कहै, हमारै ज्योतीका प्रवेश होय है। जो कोई

अग्निझालकूं बुझावै, तासौं लरै ! ऐसैं परमैं दुःखसंयोग, परका बुझावै तासौं शलुकीसी दृष्टि देखै ! कोप करै ! इस परजोगमैं भोग मानि भूल्या, भावना स्वरसकी यादि न करै । चौरासीमैं परवस्तुकाँ आपा मानै । तातैं चोर चिरहीका (चिरकालका) भया । जन्मादि दुःखदण्ड पाये तौहू चोरी परवस्तुकी न छूटे है । देखो ! भूलि तीहू लोकका नाथ नीचपरकै आधीन भया । अपनी भूलितैं अपनी निधि न पिछानै । भिकारी भया डोलै है । निधि चेतना है सो आप है । दूरि नांही । देखना दुर्लभ है । देखै सुलभ है ॥

किसीनैं पृछा, तूं कौन है ? वानैं कहा, मैं मडा (मुर्दा मरा हुवा) हौं तौ बोलता कौन कह ? मैं जानता नाहीं । तौ मैं मडा हौं ऐसा किसनैं जान्या ? तव सँभान्या, मैं जीवता हौं । ऐसैं यह मानै, मैं देह हौं तौ यह देहमैं जो मानना कीया सो कौन है ? कहै, मैं न जानौं ऐसा ल्यावना किसनैं कीया ? यह आपाकाँ खोजि देखनै

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ४२ ॥

जाननै परखनेमैं स्वरूप संभरै, तब सुखी होय है। जैसे कोई मदिरा पीय उन्मत्त पुरुषाकार पाषाण थंभकौ देखि सांचा जानि उससौ लय्या। वह ऊपरि आप नीचै आपही भया। वाकौ कहै, मैं हाय्या। ऐसैं परकौ आपा मानितैं दुःखी भया। कोई दूजा नाही। दुःखदाता तेरी भावना भव बनाया, नापैद पैदा कीया, अचेतनकौ चलाया मूवैका जतन अनादिका करता है। आपसा तू करता है झूठी मानिमैं तेरा कीया कछु जड चेतन न होय। तूही ऐसी झूठी कल्पनातैं दुःख पावता है। तेरा क्या फायदा है? तूही न विचारै है। मेरा फंद मै पारत हौं। कछु सिद्धि नांहीं। विनु विचारतैं अपनी निधि सुल्या। अनन्तचतुष्टय अमृत मैला कीया। चेतना मेरा पाड्या फंद ऐसा है। आकाश बांधा है। अचरज आवै है। परि जो केवल अविद्या याही होती तो तू न आवन्या जाता ॥

अविद्या जड छोटी शक्ति, तेरी मोटी शक्ति, न हती जाती। परी तेरी शुद्ध-

शक्तिभी बड़ी, तेरी अशुद्धशक्तिभी बड़ी। तेरी चितवनी तेरे गैरी परी। परकौं देखि आपा भूल्या। अविद्या तेरीही फैलाई है। तू अविद्यारूप कर्म न परि आपा न दै, तौ किछु जडका जोर नहीं। ताँतैं अपरंपार शक्ति तेरी है। भावना परकी करि भव करता भया। निजभावनाँतैं अविनाशी अनुपम अमल अचल परमपदरूप आनन्दघन अविकारी सार सत् चिन्मय चेतन अरूपी अजरामर परमात्माकौं पावै है। तौ ऐसी भावना क्यों न करिये? इस अपने स्वरूपहीमें सर्व उच्चत्व सकलपूज्य पद परमधाम अभिराम आनन्द अनन्तगुण स्वसंवेदरस स्वानुभव परमेश्वर ज्योतिःस्वरूप अनूप देवाधिदेवपणै इत्यादि सब पाइयै। ताँतैं अपणौ पद उपादेय है। अर अवर पर हेय है। एकदेशमात्र निजावलोकन ऐसा है। इन्द्रादिसम्पदा विकाररूप भासै है। जिसकै भये तैं अनन्त सन्त सेवन करि अपने स्वरूपका अनुभव करि भवपार भये। ताँतैं अपने स्वरूपकौं सेवौ ॥

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ३४ ॥

सर्वज्ञदेवनैँ सब उपदेशका मूल यह बताया है, एक्केर स्वसंवेदरसका स्वादी होय तौ ऐसा आनन्दमैँ मग होय, परकी ओर फिरि कवहू दृष्टि न दे। स्वरूपसमाधि सन्तनका चिन्ह है। चिसके भये रागादि विकार न पाइये जैँसेँ आकाशमैँ फूल न पाइये। देह अभ्यासका नाश अनुभवप्रकाश चैतन्यविलास भावका लखाव लखि लक्ष्यलक्षण लिखनेमैँ न आवै। लखैँ सुख होय। स्वादरूप लिखैँ न होय। आत्मसाहित विश्व व्याख्येय, व्याख्या वाणीकी रचना, व्याख्याता व्याख्यान करनहार ये सब बात कछु है, सो मोहके विकारतैँ मानिये हैं। अनादि आत्माकी आकुलता एक विशुद्ध बोधकलाकरि मिटै है। ताँतैँ सहजबोधकलाका निरन्तर अभ्यास करो। स्वरूपआनन्दी होय भवोदधिकौँ तिरौ ॥

नरभव कछु सदा तौ रहै नहि, साक्षात् मोक्षसाधन ज्ञानकला इस भवविना और जायगा न उपजै। ताँतैँ बारबार कहिये है, निजबोधकलाके बलकरि निजस्वरूपमैँ

रहौ । निरन्तर यह यत्न करौ । ऐसा कहाव तौ बारबार बालकहू न करावै । तुम अनन्तज्ञानके धनी होयकरि ऐसी भूलि धरौ, सो बडा अचिरज आवै है । सो अचिरजकी बात न करियै । वा महाजड शरीरमें आपा मानै मोटी हानि है । आपकी जानिमें सुखसमुद्रकुं पाय अविनाशिपुरीका राजा होय, अनन्तचैतन्यशक्तिराजधानीका विलासी होय है । परम आपा मानि तूं ऐसैं दुःख पावै, जैसैं कोई मडेकौ वस्त्र आभूषणादि करै, मानै मै पहरे है ! तो जीवता झूठी आपका मानै है । ऐसैं देह जड है । याके भोग तूं आप मानि झूठी कोहेकौ जडकी क्रिया आपकी मानै ? जैसैं साँप काहूकौ काँटे, काहूकौ विष चढ़ै, तौ अचिरज मानियै । जड खाय पहरे, स्नानचोवादि (तैलमर्दन) क्रिया करै, तुम कहौ हम खाया, हम भोग कीया, परके स्वामी भये । सो परस्वामीभी यौ न मानै । जैसैं राजा किङ्करनका स्वामी है । उनके धाये (भोजनसे तृप्त हुये) यौ न कहै धाया हौं । अर तुम देखो, तुमारी ऐसी चाल तुमहीकौ दुःखदायी है ॥

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ४६ ॥

जो सुन्दर वस्तु होय तो ऊपरिकी अङ्गीकार न कीजै । देह अशुचि नवद्वार
स्वै, दीखतहीकी ग्लानिरूप, मांहि सुन्दर होय, तो बाहिरमें बुरी परी है । सो मांहि
बोई, तो, ताँतें ऐसैको खेह तुमही करौ । विनसौहूँ जो आपकौ दुःखदायी न
अनादिके लगे आये हैं । तूं मोनै महन्तपुरुषोंकीसी रीतिका भाव किया है, जो
हमसौँ लगै, तिनकौँ न छोड़ै । यौँ तो महन्त न कहावोगे । महन्त तो पापकौँ भेटे
होय । ये तो पापका रूप है । ताँतें तुम समझो । अपने धनको अंग जो विराना धन
जाता रहै तुम फेरि ग्रहौ, ताँके दण्ड भवदुःख सहौ हो, तौल परको लेते थके नाही ।
बहुत दुःखी भये परि पश्रहणकी बाण न छोड़ो हौ । साहपद तो अपने धनतैं पावोगे ।
याँतैं स्वपरविवेकी होय आत्मधन ग्रहौ । परका ममत्वकौँ स्वप्नांतरमें मति करौ । तुमारे
अखण्ड स्तनत्रयादि अनन्तगुणनिधान है दरिद्री नाही । जो दरिद्री होय सो ऐसै काम करै ॥

तुमारा निधान श्रीगुरुनै तुमपै दिया अब संभारि सुखी होहु । जैसे काहू नारीनै अपनी सेजपरि कांठकी पूतरीकौ सिंगारी सुवाणी, पति आया तब यौ जानै, मेरी नारी शयन करी है । हेला दे, वा न बोलै, तब पवनादि खिजमति सारी रात्रि-विषै करी । प्रभात भया, तब जानी मै झूठी सेवा करी । ऐसै देहकौ सांचा आपा मानि सेवै है । ज्ञान भये जानै, यह झूठ अनादि देहमै आपा मान्या । चिदानन्द तुम इन्द्रिय पंच चोर पोषै हो; जानौ हो यह हमकौ सुख दे है ! सो अन्तरके गुण-रत्न ये चोर ले हैं, तुमकौ खबरी नांहीं । अब तुम ज्ञानखड्ग संभालौ । चोरनकौ ऐसै रोको फेरि बल न पकरै । विषयकषाय जीति निजरीतिकी राहमै आवौ । अर तुम शिवपुरकौ पहुचि राज करौ । तुम राजा, दर्शनज्ञान वजीर राजके थंभ, गुण वसति, अनन्तशक्ति राजधानीका विलास करौ । अभेद राज राजत तुहारा पद है । अचेतन अपावन अथिसौ कहा स्नेह करौ ? ॥

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ४८ ॥

नौकै निहारो । इस शरीरमन्दिरमें यह चेतनदीपक सासता है । मन्दिर तौ छूटै
परि सासता रतनदीप ज्योंका त्यों रहै । व्यवहारमें तुम अनेक स्वांग नटकीज्यों धरे ।
नट ज्योंका त्यों रहै । वह स्पष्टभाव कर्मको है । तौऊ कमलिनीपलकीनाई कर्मसौं धरे ।
बंध, न स्पर्थे । अन्य भाव मांटी धरैहु एक है । तैसें अन्य अन्य पर्याय धरैहु
एक है । समुद्र तरङ्गकरि वृद्धि हानि करै, समुद्रत्वकरि निश्चल है, विभावकरि वृद्धि हानि
करै । वस्तु निज अचल है । सोनों वान भेद परि अभेद, यो नानाभेद कर्मतैं, परि वस्तु
अभेद । फटिकमणि हरी लालपुडीतैं भासै, स्वभाव श्वेत है । परसौं पर, निज चेतनामें पर
नहीं । षड्भाव ऊपरि ऊपरि रहै । जलपरि सिवालकीनाई गुप्त शुद्धशक्ति तेरी चिदानन्द
व्यक्त करि भाय ज्यों व्यक्त न्है । तूं अविनाशीरसका सागर । परस कहा मीठा देख्या ?
जोके निमित्ततैं संसारकी घुमेरी भई, ताहींकौ भला जानि सेवै है । जैसें मद पीवनहारा मद
पीवता जाय, दुःख पावता जाय, अधिक घुमेरीमें भला जानि जानि सेवै; तैसें भूला है ॥

जैसे एक नगरमें एक नर रहे । नगर सूना, तहां दूजा और नाहीं, सो वो नर उस नगरमें चौरासी लाख घरि, तिन घरनकों सदा सवान्याही करै, फिरि दूजे दिन फिरि औरमें रहे, तब वाकौ संवारै । इस भांति उन भोंतडेकौ संवारतैं सवारतैं सारा जन्म बीता । उनके संवारनेतैं रोग भया । जबका संवारै था तबहीका रोग लग्या । आपकी परमचातुरीकौ भूल्या । वा नरकौ बडी विपत्ति, विनाप्रयोजन एकला सूने घरनमें मसकति उनकी करै । आप अनन्तबलवान् वृथा भूलि दुःख पावै है । इस नरका शहर एक परमवसतीका, वहांका यह राजा है, वहांकौ संभालै तौ सूने घरनकी सेवा तजै, वहांका राज्य करै । तैसें यह चिदानन्द चौरासी लाख योनिके शरीरनकी संवारना करै । जिस घरमें रहे वैसें संवारै, फिरि दूजी शरीर झोपडीकौ संवारै, फिरि और पावै, उसकौ संवारता फिरै । सब देह जड, तिन जडनकी सेवा करते करते अनादि बीता । इस शरीरसेवामें कर्मरोग अनादिका लग्या आया । तिसतैं इस

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ५० ॥

रोगकरि अपना अनन्तबल छीन पन्या, बड़ी विपत्ति जन्मादि भोगवै है । जडनको ऐसा मानै है, मैही हों ॥

जैसे वानर एक कांकरा पड़े, तब रोवै, ऐसे याके एक अङ्गभी देहका छीजै, तौ बहुते रोवै । ये मैरे, मै इनका झूठी जैसे जडनके सेवनतें सुख मानै । अपनी शिवनगरीका राज्य भूल्या, जो श्रीगुरुके कहै शिवपुरीको संभालै, तौ वहांका आप बेतनराजा अविनाशी राज्य करै । तहां चेतना बसती है । तिहुं लोकमें आन फिरै न भवमें फेरि जडमें न आवै । आनन्दघनको पाय सदा सासता सुखका भोक्ता होय सो करिये ॥

यह परमात्म पुरुष तिसकी निजपरिणति अनन्तमहिमारूप परमेश्वरपदकी रम-णहारी, सोही मूलप्रकृति पुरुषप्रकृतिका विवेकरूप तरु, तिसके निजानन्द फल तिसको तें रसास्वाद लेकरि सुखी होहु । जैसे कोई राजाको विरानां गढ लेना मुसकिल, तैसे

इस आतमाको परपद लेना मुसकिल है। काहेतैं अनादि परपद लेता फिरै है। परि पररूप न भया, चेतनही रह्या। अरु चेतनापद आतमाका है, इसको न भी जानै है, भूल्या फिरै है, तौभी वाकी रहणी निश्चयकरि याहीमें, यातैं मुसकिल नाहीं, अपना स्वरूपही है। भ्रमका पडदा आपहीनैं अनादिका कीया है। तातैं ना भासै है, आप आपको। परि आप आपको तजि बाहरि न गया ॥

जैसे नटवेनैं पशुका वेष धन्या तौ वह नर नरपणाको तजि वारैं न गया। पशु-वेष न धरै तौ नरही है। भ्रमतैं परममत्व न करै, तौ देहका स्वांग न धरै, तौ चिदानन्द जैसेका तैसा रहै। जैसे एक ढाबीमें रतन वाका कछु विगन्या नाहीं, गुप्त पुडत दूरि करि, काढै तौ व्यक्त है। तैसें शरीरमें छिप्या आतमा है, याका कछु न विगन्या गुप्त है, कर्मरहित भये प्रगट है। गुप्त प्रगट अवस्थाभेद है। दोन्यों अवस्थामें स्वरूप जैसेका तैसा है, ऐसा श्रद्धाभाव सुखका मूल है। जाकी दृष्टि पदार्थशुद्धिपरि

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ५२ ॥

नाहीं, कर्मदृष्टि तै अवलोकै, सुख कौन पावै ? जैसी दृष्टि देखै, तैसो फल होय ! मयूर-
कौ सुकरंद पाषाण है तामें सब मोर भासै, पाषाणओर देखै मोर भासै, पदार्थओर देखै
पदार्थही है, मोर नाही । तैसैं परमैं पर भासै, निजओर देखै पर न भासै,
निजही है । सुखकारी निजदृष्टि तजि दुःखरूप परदृष्टि न दीजै ॥

हे चिदानन्दराम ! आपकौ अमर करिकै अवलोकौ । मरण तुममैं नहीं । जैसैं
कोई चक्ररत्न जिसके घरमैं चौदा रत्न नव निधि अर वह दरिद्री भया फिरै, ताकौ
अपनैं चक्रवर्तिपद अवलोकनमात्रतैं चक्रवर्ती आप होय, ऐसैं स्वपदकौ परमेश्वर अव-
लोकै, तौ तब परमेश्वर है । देखौ देखौ भूल ! अवलोकनमात्रतैं परमेश्वर होय । ऐसी
अवलोकना न करै, इन्द्रियचोरनके वश भया अपने निधान सुसाय (लुटवाय) दरिद्री
भया, भवविपत्तिकौ भरे है, भूलि न मेटै है । सो चित्तविकाररूप जीव होय, तब
परकौ आपा मानै । ए भाव जीवका निज जातिस्वभाव नाहीं है । इन भावनतैं जो

व्यापार सोही चेतना एक तू जीव निज जातिस्वभाव जानु । यह चेतना है सो केवल जीव है, सो अनादि अनन्त एकरस है, तिसरै चेतना साक्षात् आप जीव जानना, तिसरै शुद्धचेतनारूप जीव भये । इन रागादिभावविषैहू आपनमें जीव कर्मचेतनारूप होय प्रवर्तै है । चेतना जीवचेतना चेतनारूप आप तिष्ठै है । कर्मचेतना कर्मफलचेतनाविकार जीवचेतनका है । परि व्यापक चेतना है । चेतना जीवविना नाहीं है । चेतना शुद्धजीवका स्वरूप है । ताँके जाने ज्ञाता जीवकै ऐसा भाव होय है ॥

अब हम शुद्धचेतनारूप स्वरूप जान्या । ज्ञानदर्शन चारित्ररूप हम हैं, विकाररूप हम नाहीं, सिद्धसमान हैं, बन्ध मुक्ति आश्रव संवरूप हम नाहीं, हम अब जागे, हमारी नींद गई, हम अपनै स्वरूपकौ एक अनुभवै हैं, अब हम संसारतैं जुदे भये, स्वरूपगजपरि हम आरूढ भये, स्वरूपगृहविषै प्रवेश कीया, हम तमासगीर इन संसारपरिणामनेके भये । हम अब आप अपने स्वरूपकौ देखै जाँनै हैं । इतना विचार

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ५४ ॥

तौ विकल्प है। ज्ञानका प्रत्यक्षरस वेदना भावनमें सो अनुभव है। विचारप्रतीतिरूप साधक है, अनुभव भावसाध्य है। साधकसाध्यभेद जानै तौ वस्तुकी सिद्धि होय। सो कहिये हैं ॥

साध्यसाधक उदाहरण कहिये हैं। एकक्षेत्रावगाही पुद्गलकर्महीका सहजही उदय स्थितिकौ होय है, सो साधक अवस्था जाननी। तहां तवलग तिस हवनेका (?) साधक, बहिरात्मा साध्य है। सम्यग्भाव साधक है, तहां वस्तुस्वभाव जातिसिद्ध होना साध्य है। जहां शुद्धोपयोगपरिणति होना साधक है, तहां परमात्मा साध्य है। व्यवहाररत्नत्रय साधक है, तहां निश्चयरत्नत्रय साध्य है। सम्यग्दृष्टिकौ जहां विरति व्यवहारपरिणति हवना साधक है, तहां चारित्रशक्ति मुख्य हवना साध्य है। देव-शास्त्र-गुरु भक्ति विनय नमस्कारादि भाव जहां साधक है, तहां विषयकषायादि भाव-

नसौ उदासीनता मनःपरिणतिकी स्थिरता साध्य है। जहाँ एक शुभोपयोग व्यवहारपरिणति हवना साधक है, तहाँ परम्पराभोक्ष साध्य है ॥

जहाँ अन्तरात्मारूप जीवद्रव्य साधक है, तहाँ अभेद आपही जीवद्रव्य परमात्मारूप साध्य है। जहाँ ज्ञानादिगुण भोक्षमार्गरूपकरि साधक है, तहाँ अभेद आपही ज्ञानादिगुणका भोक्षरूप साध्य है। जहाँ जघन्य ज्ञानादिभाव साधक है, तहाँ अभेद आपही वेही ज्ञानादिगुणका उत्कृष्टभाव साध्य है। जहाँ ज्ञानादि स्तोक निश्चयपरिणतिकरि साधक है, तहाँ अभेद आपही बहुत निश्चयपरिणतिरूप ज्ञानादि गुण साध्य है। जहाँ सम्यक्त्वी जीव साधक है, तहाँ तिस जीवकै सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्र साध्य हैं। जहाँ गुणभोक्ष साधक है, तहाँ द्रव्यभोक्ष साध्य है। जहाँ क्षपकश्रेणी चढना साधक है, तहाँ तद्भवसाक्षान्भोक्ष साध्य है। जहाँ द्रव्यतै भावतै साक्षात् द्वैतव्यवहार साधक है, तहाँ साक्षान्भोक्ष साध्य है। जहाँ भावितमनादिरीतिविलय (?) साधक है,

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ५६ ॥

तहां साक्षात्परमात्मरूप केवल हवना साध्य है। जहां पौद्गलिककर्म खरणा साधक है, तहां चिद्विकारविलय हवना साध्य है ॥

जहां परमाणुमात्रपरिग्रहप्रपंच साधक है, तहां संसारभ्रमण साध्य है। जहां सम्यग्दृष्टि हवना साधक है, तहां मोक्षपद होना साध्य है। जहां काललब्धि साधक है, तहां द्रव्यकौ तैसाही भाव हवना साध्य है। हम स्वभावसाधनकरि अपने स्वरूपकौ साध्य कीया है ॥ यह साध्यसाधकभाव जानि सहजही साध्य सधै है ॥ विशेष इनका कीजिये है। अहं नरः। अहं देवः। अहं नारकः। अहं तिर्यक्। ये शरीर मेरे; परमैं निजभाव परकौ आपा मानना, स्वरूपतैं बाहरि परपदार्थमैं परिणाम तन्मय करना रागभावतैं रंजकताकरि परके स्वरूपकौ आप प्रतीतिकरि जानियै। ऐसा मिथ्यात्व दूजा भेद मिथ्यात्वका। ऐसैं मिथ्यात्वकौ साधै है। सो कहिये हैं ॥

अतत्त्वश्रद्धान मिथ्यादर्शन, अयथार्थज्ञान मिथ्याज्ञान, अयथार्थाचरण मिथ्या आचरण । क्षुधादि अठरा दोष संयुक्त देवकी भक्ति तारणबुद्धितै मिथ्यात्व होय । काहेतै? परानुभवी है, मिथ्यालीन है, तिनके सेये मिथ्यात्व होय । ऐसैं दोषसहित गुरु ग्रन्थलीन विषयारूढ परबुद्धिधारकौ मानै मिथ्यात्व, मिथ्याशास्त्र मिथ्यामत मिथ्याधर्म इनकौ मानि मिथ्यात्व सो मिथ्यात्व बहिरात्माका साधक है । अनादिका बहिरात्मा इस मिथ्यासेवनतै भया है । तातैं बहिरात्मा साध्य है । दृजा सम्यग्भाव साधक है । सो वस्तुका जो स्वभाव अनन्तगुण ताकी सिद्धि करे है । काहेतै? सब गुण यथाविधि स्वरूप सम्यक् अपने स्वरूपकौ जब धरे, जब सम्यग्भावकौ लीये होय, ज्ञानका निर्विकल्प जानपणा सब आवरणरहित केवलज्ञानरूप सम्यगवस्थारूप, सो सम्यग्ज्ञान कहिये । यौही आवरणरहित शुद्ध सम्यक् रूप यथावत् निश्चयभावरूप निर्विकल्प सब गुण सम्यक् कहिये ॥

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ५८ ॥

द्रव्य अपने शुद्धत्व जैसा स्वरूप है, तैसैको लीये । पर्याय जैसा कबु परिणम-
नरूप स्वभाव है, तैसैको लीये । ऐसै द्रव्यगुणर्यायिका स्वभाव जाति सब सिद्ध हवना
सम्यग्भावतै है । तातै सम्यग्भाव साधक है । परमात्मा साध्य है, सो कहूँ शुद्धोपयोगस्वभावसङ्गतै
शुद्धोपयोगपरिणति साधक है । ज्ञानदर्शन तो साधक । तातै सब रूप शुद्धोपयोग, चारित्ररूप शुद्धोपयोग,
होय है । ज्ञानदर्शन तो साधक । तातै सब रूप शुद्ध नार्हीं । केतेक शक्तिकरि शुद्ध है । चारित्र-
सो ज्ञानदर्शन तो साधक, तातै सब शुद्ध नार्हीं । केतेक शक्तिकरि शुद्ध है । चारित्र-
गुण वारमैके ठिकाने सब शुद्ध हैं । परि परम यथाख्यात तेरमैं चौदमैमैं नाव पावै है ।
तातै केतेक ज्ञानशक्ति शुद्ध भई । ता ज्ञानशक्तिकरि केवलज्ञानरूप गुप्त निजरूप ताकौ
प्रतीति व्यक्ति करि, तब परिणतिनै केवलज्ञानकूं प्रतीति लचि श्रद्धाभावकरि निश्चाय
कीया । गुप्तका व्यक्तश्रद्धानतै व्यक्त होय जाय है ॥

एकदेशस्वरूपमैं शुद्धत्व सर्वदेशकौ साधै है । शुद्धनिश्चयकरि शुद्धस्वरूप जान्या

परिणतिमें शुद्धनिश्चय भया । तब वैसाही वेद्या । शुद्धका निश्चय शुद्धपरमात्माको कारण है । तातें शुद्धोपयोग साधक, परमात्मा साध्य है । निश्चय साध्य है सो कैसे तत्त्वश्रद्धानमें है । याका हेय श्रद्धान । निजतत्त्वका उपादेय श्रद्धान तत्त्वज्ञानमें परतत्त्वका रूप हेय जान्या, निजतत्त्व उपादेय जान्या । भवभोगादिविरति कार्यकारी जानी । सम्यक्त्वाचरणरीति उपादेय जानी । ऐसा व्यवहार तत्त्वसौ मिल्या विचार हेय उपादेयांका सम्यग्भेदको लीये है । इस व्यवहारकै होतै निजसम्यक्स्वरूपको मन इन्द्रिय उपयोग निरोधि शुद्ध अनुभवै । निजश्रद्धान सिद्धसमान स्वरूपका करै । तत्त्व सातका भेल नहीं । निजशुद्धतत्त्व अनुभवगोचर करै । निश्चयकरि श्रद्धानमें आपको परमात्मा शुद्ध है । निश्चयकरि ज्ञान परमात्माका जानपणा केवलज्ञान जातिमें जानै । स्तोक सम्यग्ज्ञानतै सब सम्यग्ज्ञानको प्रतीतिमें जानै । स्वसंवेदमें जातिरूपकरि अपना स्वरूप केवलज्ञानमें ठीक जान्या । थोरे ज्ञानमें बहुत ज्ञानकी प्रतीति आई । निश्चयकरि स्वरूप जान्या

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ६० ॥

सो निश्चयज्ञानपरिणतिकरि स्वरूप आचरना स्वरूपाचरण । परमात्माका श्रद्धानज्ञान निश्चयकरि केतेक ज्ञानादि शुद्धशक्तिकरि भया । तैसही आचरण भया ॥

निश्चयनय परमात्मा है । परिणति वैसीही निश्चयरूप परिणई है । ये निश्चय रत्नत्रय प्रथम व्यवहाररत्नत्रय भये होय हैं । ताँ व्यवहाररत्नत्रय साधक, निश्चय-त्रशक्ति मुख्य साध्य है । सम्यग्दृष्टिकै विरति व्यवहारपरिणति साधक है, तहां चारि-भेद विषयनमै रति नांही, सो कहिये हैं । विरति परिणति कहिये रति नांही । ताँ पविर्नै रति नांही, कषायमै रति नांही, अशुभाचरणका त्याग, शुभाच-चारित्रशक्ति विश्राम और आचरण होय, तहां चारित्र कहिये । परिणतिशुद्धता प्रगटै तहां विषयादि उदासीनतामै परिणति स्थिरता साध्य है देवभक्ति परमात्मव्यक्त शुद्ध-

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ६१ ॥

चेतना प्रगट अनन्तगुण प्रगट तिनकी पूजा सेवा मनसों परिपूर्ण प्रीति बाह्य प्रभावना अन्तरङ्ग ध्यान गुणवर्णन अवज्ञा अभाव परमउत्साह मन वच काय धन सर्व भक्ति निमित्त लगावै, अपने प्राणहूतै वल्लभ प्राण दुःखमूल जानै, उनको अनन्तसुखकारण जानै, शुद्धस्वरूप जानि भक्ति करै, शुद्धस्वरूप अभिलाषी आप यातै उनकी भक्ति रुचि श्रद्धा प्रतीतितै करै, शास्त्रकी भक्ति करै । काहेतै ? अपनौ स्वरूप शास्त्रतै पावै है । संसारदुःखहानि स्वरूपभावनातै होय, सो पावै । स्वपरविवेक ग्रन्थतै प्रगटै । मोक्षमार्ग मोक्षस्वरूप वाणीतै लहै । तातै शास्त्रभक्ति कही । गुरु मोक्षमार्ग उपदेश, शान्तमुद्रा धारी गुरु, मुद्रा विनावचन बोल्याही मोक्षमार्ग दिखावै । ऐसै श्रीगुरु सर्वदोषरहित तिनकी भक्ति कही । इनकी भक्ति करै, मुक्तिके ये कारण जानि करै । तब भवभोगसों उदास होय मन स्वरूपहीकी स्थिरता चाहै, तब साधै । तातै उनकी भक्ति साधक है, मनकी स्थिरता साध्य है ॥

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ६२ ॥

शुभोपयोगके तीन भेद हैं । क्रियारूप, भक्तिरूप, गुणगुणिभेदविचाररूप । सो सातिशयकौ लीये निरतिशयकौ लीये षड्भेद । ये जो सम्यक्त्वसहित सो सातिशय, सम्यक्त्वविना तीनों निरतिशय । सम्यक्त्वसहितमें तौ नियम है, परम्परा मोक्ष करैही करै । विनासम्यक्त्व शुभोपयोग संसारसुख दे, देवपद दे, राजपद दे । तहां देवगुरुशास्त्रकौ निमित्त होय याँकै लाभ होनो होय तौ होय, नांही तौ न होय । कारजको कारणविना नियम है, ऐसी रीति जानियौ । याप्रकार शुभोपयोग साधक है, परम्परा-मोक्ष साध्य है ॥

अन्तरात्मा भेदज्ञानकरि परसौ भिन्न निजरूप जानै, सिद्धसमान प्रतीतिज्ञान-गोचर करै, तब साधक है आपही आप, निश्चयनय अभेद परमात्मा साध्य है । जहां ज्ञानादि मोक्षमार्ग कहिये एकदेश स्वसंवेदन शुद्धोपयोगरूप, तहां अभेदज्ञानमूर्ति आत्मा मोक्षस्वरूपकौ साधै, ताँतै अभेदज्ञान मोक्षरूप साध्य है । जघन्यज्ञानतैं उत्कृष्ट-

ज्ञान पाईये, ताँ जघन्यज्ञान साधक उत्कृष्टज्ञान साध्य है। जहाँ ज्ञान स्तोकादि निश्चय करे, तहाँ वह निश्चय बढे। जैसँ स्तोक अमल है चाहि लीन अमल बहृत बढे, बहृत निश्चयपरिणतिरूप ज्ञानादि गुण बढे, सो साध्य है। सम्यक्त्वी जीव दर्शनज्ञान-चारित्रिकौ साधै, ताँ सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन चारित्र साध्य है। सम्यक्त्व साधक है। सम्यक्त्वज्ञानादि भाव शुद्ध होय जब द्रव्यकर्म मिटे, तब द्रव्यमोक्ष होय, ताँ गुणमोक्ष साधक, द्रव्यमोक्ष साध्य है। क्षपकश्रेणी चढे जब तद्भवमोक्ष होय, ताँ क्षपकश्रेणी चढना साधक है, तद्भवमोक्ष साध्य है। दरवितलिङ होय, भावित स्वरूपभाव भाव होय, तब साक्षात् मोक्ष सधै, ताँ दरवित भावित यति व्यवहार साधक है, तहाँ साक्षान्मोक्ष साध्य है। भावितमनेके विकार विलय भये साक्षान्मोक्ष होय ताँ भावित मनादिरीति विलय साधक है, साक्षान्मोक्षरूप साध्य है ॥

जहाँ पौद्गलिक कर्म खिरणा साधक है, काहेतै? पुद्गलकर्म विपाक आये मनो-

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ६४ ॥

विकार उपजे है, ताँतें पुद्गलही खिरि जाय, तब मनोविकार कहाँतैं रहै? ताँतैं मनो-
विकारविलय हवना साध्य है, कर्म खिरणा साधक है। परमाणुमात्रभी परिग्रह होय
तौ ममताभाव होयही होय, ताँतैं परमाणुमात्र परिग्रह साधक है, ममताभाव साध्य है।
मिथ्यात्वतैं संसार भ्रमै, मिथ्यात्व साधक है, मोक्ष होना साध्य है। सम्यक्त्व भये मोक्ष
स्वभावसिद्धि होय, ताँतैं काललब्धि साधक है। जैसी काललब्धि आवै, तैसीही
साधकसाध्यभेद अनेक हैं, सो जानै ॥

शब्द साधक है, अर्थ साध्य है। अर्थ साधक है, ज्ञानरस साध्य है। स्थिरता
साधक है, ध्यान साध्य है। ध्यान साधक है, कर्म क्षरणा साध्य है। कर्म क्षरणा
साधक है, द्रव्यमोक्ष साध्य है। रग-द्वेष-मोह अभाव साधक है, संसाराभाव साध्य
है। धर्म साधक है, परमपद साध्य है। स्वविचारप्रतीतिरूप साधक है, अनाकुलभाव

साध्य है। समाधि साधक है, निजशुद्धस्वरूप साध्य है। स्याद्वाद साधक है, यथार्थ पदार्थकी साधना साध्य है। भली भावना साधक है, विशुद्धज्ञानकला साध्य है। विशुद्धज्ञानकला साधक है, निजपरमात्मा साध्य है। विवेक साधक है, कार्य साध्य है। धर्मध्यान साधक है, शुक्लध्यान साध्य है। शुक्लध्यान साधक है, मोक्ष साक्षात् साध्य है। वीतरागभाव साधक है, कर्मअबंध साध्य है। संवर साधक है, निर्जरा साध्य है। निर्जरा साधक है, मोक्ष साध्य है। चिद्धिकारभाव साधक है, शुद्धोपयोग साध्य है। द्रव्यश्रुत सम्यगवगाहन साधक है, भावश्रुत साध्य है। भावश्रुत साधक है, केवलज्ञान साध्य है। चेतनमें चित्त लीन करना साधक है, अनुभव साध्य है। अनुभव साधक है, मोक्ष साध्य है। नयभङ्गी साधक है, प्रमाणभङ्गी साध्य है। प्रमाणभङ्गी साधक है, वस्तुसिद्धि करना साध्य है। शास्त्र सम्यक् अवगाहन साधक है, श्रद्धागुणज्ञता साध्य है। श्रद्धागुण साधक है,

परमार्थ पावना साध्य है। यतिजनसेवा साधक है, आत्महित साध्य है। विनय साधक है, विद्यालाभ साध्य है। तत्त्वश्रद्धान साधक है, निश्चयसम्यक्त्व साध्य है। देवशास्त्रगुरुकी प्रतीति साधक है, तत्त्व पावना साध्य है। तत्त्वामृत पीवना साधक है, संसारखेद भेटना साध्य है। मोक्षमार्ग साधक है, संसारखेद भेटना साध्य है।

मोक्षमार्ग साधक है, मोक्ष साध्य है। ध्यान साधक है, मनोविकारविलय साध्य है। ध्यानाभ्यास साधक है, ध्यानसिद्धि साध्य है। सूत्रतात्पर्य साधक है, शास्त्रतात्पर्य साध्य है। नियम साधक है, निश्चयपद पावना साध्य है। नयप्रमाणनिक्षेप साधक है, न्यायस्थापना साध्य है। सम्यक्प्रकार हेय उपादेय जानना साधक है, निर्विकल्प निजरस पीवना साध्य है। परवस्तुविरक्ता साधक है, निजवस्तुप्राप्ति साध्य है। परदया साधक है, व्यवहारधर्म साध्य है। स्वदया साधक है, निजधर्म साध्य है। संवेगादि आठ गुण साधक हैं, सम्यक्त्व साध्य है। चेतनभावना साधक है, सहजसुख साध्य है।

प्राणायाम साधक है, मनोवशीकरण साध्य है। धारणा साधक है, ध्यान साध्य है। ध्यान साधक है, समाधि साध्य है। आत्मरुचि साधक है, अखण्डसुख साध्य है। नय साधक है, अनेकान्त साध्य है। प्रमाण साधक है, वस्तु प्रसिद्ध करना साध्य है। वस्तुग्रहण साधक है, सकलकार्यसामर्थ्य साध्य है। परपरिणति साधक है, भवदुःख साध्य है। निजपरिणति साधक है, स्वरूपानन्द साध्य है। ऐसै साधकसाध्य हैं। अनेक भेद जानि निज अनुभव करिये। ये सब स्वरूप आनन्द पायवेकौ बताये हैं। कर्मकल्पना कल्पित है। आत्मा सहज अनदिसिद्ध है। अनन्तसुखरूप है। अनन्त गुणमहिमाकौ धरै है। वीतरागभावना भावनतै शुद्ध उपयोग धारि स्वरूपसमाधिमें लीन होय स्वसेवदन ज्ञान परिणतिकरि परमात्मा प्रगट कीजै ॥

कोई जानैगा, आजिके समयमें स्वरूप कठिन है, तिसनै स्वरूप चाहि भेटि बहिरात्मा है, आजिसौ अधिक परिग्रह चतुर्थकाल पुण्यवंत नर चक्रवर्ती आदिक

तिनकै था, सो इसके तो थोरा है, सो परिग्रह जोरावरी इसके परिणामनमें न आवे है। यौही दौरि दौरि परिग्रहमें धुकै है। जब ठालौ होय, तब विकथा करै। तब स्वर्ल-पके परिणाम करै, तो कौन रोकै? परपरिणाम सुगम, निजपरिणाम विषम बतावे है। देखौ अचिरजकी बात, देखै है जानै है देख्यौ न जाय जान्यौ न जाय। ऐसैं कहत लाजहू न आवै। संसारचातुरीको चतुर आप जानिवेको शठ ऐसौ हठ धिठौहीसौ पकरि पकरि परत विसनको गाढौ भयौ। स्वभावशुद्धि विघारी भारी भव बांधि अंध धंधमें धायौ न लखायौ। आप अब श्रीगुरुप्रतापतैं संतसंग मिलाप, जातैं मिटै भवताप, आप आपहीमें पावै, ज्ञान लक्षण लखावै, आप चिंतन धरावै, निजपरिणति बढावै, निजमांहि लवलावै, सहजस्वरसको पावै, कर्मबन्धन मिटावै, भाव आपमें लगावै, वर चिद्गुणपर्यायको ध्यावै, तब हर्ष उपावै, मन विश्राम आवै, रसास्वादको जु पावै, निज अनुभव कहावै, ताको दुरिको बतावै, भवभावरी घटावै, आप अलख लखावै,

चिदानन्द दरसावै, अविनाशी रस पावै, जाको जस भव्य गावै, जाकी महिमा अपार जानै मिटै भवभार महा, ऐसौ समयसार अविकार जानि लीजिये ॥

जीजिये सदैव कीजिये, सोही वोही द्रोही न होय, आप अवलोय, शुद्ध योग थाय, परको वियोग भाय, सहज लखाय, जिन आगममें कही वात, तिहु लोकनाथ बहै, विख्यात निजअनुराग सेती धरि, वीतरागभाव यह दाव पायो, फिरि मिलै न उपाय, ऐसो भाव धरि, जातै मिटै भवफंद, तातैं मानथंभ भेदि मायाजलकौ जलाई। क्रोध अग्नि बुझाई, लोभलहरि मिटाई, विषयभावना न भाइ, चिदानन्दरायपद देखौ देखौ। निज आपकौ गवेषौ, परवेदनाकी उच्छेदना करि सहजभाव धरि अंतर्वेदी होय, आनन्दधाराकौ देखि, परमात्मनिश्चयरूप देखि, इस परपरिणतिनारीसौ ललचाये ॥

कुमतिसखी संगि गतिमें डालै, निजपरिणति राणीके वियोगतैं बहुदुःखी भये ।

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ७० ॥

अब निजपरिणतियासौ अतीन्द्रिय भोग भोगवो, जहां सहज अविनाशीरस वर्षे है। अरूपीकमें पद्मराग मणि कल्पि आनन्द झूठेही मानौ हों। ऐसे परमें निजभाव कल्पा सो झूठेही होस पूरी करो, सो न होय। आकाशमें देव एक, ताके कर्ममें चिंतामणि, ताको प्रतिबिम्ब अपने वासनके जलमें देख्यौ, मनमें विचारि मेरे चिन्तामणि है, दाई है। साचौ चिन्तामणि घरमें ताकौ न देखौ! अरु कल्पना तुमहीकौ दुख-खेद करो, सो कहा बढाई? अब अपनो साचो अखंड पद देखो। बहुत सुधारसकरि पूर्ण, जाको सुधारस पीवत अमर होय, सो रस पीवनो। बहुत

॥ अथ अनुभववर्णनम् ॥
पौद्गलिककर्महीकरि पांच इंद्रिय छे मनरूप बन्या सज्जी देह, तिस देहविषै तिस-प्रमाण तिष्ठया जु है जीवद्रव्यभी इंद्रिय मन सज्जा नाम पावै। भावइन्द्रिय भावमन

छह प्रकार उपयोगपरिणामभी भेद पड्या है। एकएक उपयोगपरिणाम एककौं देखै जानै। मन उपयोग परिणाम चिन्ता विकल्प देखै जानै। परिणाम विचार विकल्प चिन्तारूप मानना होय। तिस होनै सो तिस परिणामभेदकौं मन नाम कह्या देखि संत अवर अब इनहकौं एक ज्ञानका नाम लेइ कथन करूं हौं। तिस ज्ञानकथनैकरि दरसनादि सब गुण आगया। इन मन इंद्रियभेदहके ज्ञानकी पर्यायका नाम मतिसञ्ज्ञा कहिये। मिश्र भेदज्ञानकरि अर्थस्यौ अर्थान्तरविशेष जानै, इस जाननेकौं श्रुतसञ्ज्ञा कहिये। दोन्यौं ज्ञानपर्याय कुरूप सम्यग्रूप कहिये। मिथ्यातीकौं जाननमें कुरूपता पौद्गलिक कर्मकरि पांचइन्द्रिय छठे मनरूप बन्या संज्ञी देह। तिस देहविषैं तिसप्रमाण तिष्ठ्या जु है जीवद्रव्यभी इन्द्रिय मन संज्ञा नाम पावै। भावइन्द्री भावमन छहप्रकार उपयोगपरिणामभी भेद पड्या है, एकएक उपयोग परिणाम एकएककौं देखै जानै मन-उपयोग परिणाम चिन्ताविकल्प देखै जानै परिणामविचार विकल्पचिन्तारूप मानना

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ७२ ॥

होय, तिस होनेसों तिस परिणामभेदकों मन नाम कहा । देखि संत (?) अवरु इन-
हिकों एकज्ञानका नाम लेइ कथन करूं हों, तिस ज्ञानकथनैकरि दर्शनादि सबगुण
आय गए । इन मनइन्द्रिभेदके ज्ञानकी पर्यायका नाम मतिसंज्ञा कहिये मिश्रभेदज्ञान-
करि अर्थस्यों अर्थान्तर विशेष जानै तिस जाननैकों श्रुतसंज्ञा कहिये । दोन्यों ज्ञान-
पर्याय कुरूप सम्यग्रूप कहिये मिथ्यातीकैं मतिश्रुतरूप जानना है, तिस जाननै विषे
स्व-परव्यापक अव्यापककी जाति नार्हीं । तिस ज्ञेयकों आप लखै अथवा लखताही
नार्हीं । मिथ्यातीकैं जाननमें कुरूपता है । सम्यग्दृष्टि परकों जानै हैं । स्वकों स्व जानै
है । चारित्रमें परकों निजरूप अवलैवै है मिथ्याती । सम्यग्दृष्टि निजकों निज अव-
लैवै है । सम्यक्ता सविकल्प निर्विकल्परूपसों दोय प्रकार है । जघन्यज्ञानीकैं जब तिस
परज्ञेयकों अव्यापकपररूपत्व जानि आपकों जाननरूप व्यापक जानै सो तो सविकल्प-
सम्यक्ता । अवरु जु आप जाननरूप आपकोंही व्याप्यव्यापक जान्या करै सो निर्वि-

कल्परूप सम्यक्ता । अवरु जो एकेबेर एकसमय विषै स्वकौं सर्व स्वकरि लखै, सर्व-
परकौं परकरि लखै तहां चारित्र परमशुद्ध है ॥

तिस सम्यक्ताकौं परम सर्वथा सम्यकात्म कहिये केवल दर्शनज्ञानपर्यायविषै
पाइये । अवरु जिस ज्ञेयप्रति प्रयुजै तिसहीकौं जानै औरकौ न जानै । मिथ्यातीकै
वा सम्यक्दृष्टिकै ज्ञेयप्रयोजना ज्ञान तो एकसा है, परंतु भेद इतना ही, मिथ्याती
जेता जानै तेता अयथार्थरूप साधै । सम्यग्दृष्टि तिसही भावकौं जानै तितनैही यथा-
र्थरूप साधै । तातैं तिस सम्यग्दृष्टिकै चारित्र अशुद्ध परिणामनसौं बंध होय सकता
नाहीं । तिन उपयोग परणामौनैं बंध आसव तिन अशुद्ध परिणामनकी शक्ति कीलि
राखी है । तातैं निरासव निरबंध है । अरु सब एक आपहीकौं आप चित्तवस्तु व्यापक
व्याप्यताकरि प्रत्यक्ष आपही देखन लगै जानन लगै, अरु ते चारित्रपरिणाम निज
उपयोगमय चित्तवस्तुविषै थिरीभूत शुद्ध वीतराग मग्नरूप प्रवर्तै । तिनही चारित्र परि-

णामजन्य निजास्थ होय है। यौंकरि सम्यग्दृष्टिकै ज्ञानदर्शनचारित्र्यसहित परिणाम निजचित्तवस्तुहीकौ व्याप्यव्यापकरूप देखतै जानतै आचरतै निजास्वाद लेय निज-स्वाददशाका नाम स्वानुभव कहिये ॥

स्वानुभव होतै निर्विकल्प सम्यक्ता उपजै। स्वानुभवकौ कहौ वा कोई निर्विकल्पदशा कहौ, वा आत्मसन्मुख उपयोग कहौ, वा भावमति भावश्रुत कहौ, वा स्वसुख कहौ, इन्द्रियमनातीत भाव, शुद्धोपयोगस्वरूप मग्न वा निश्चयभाव, स्वरससाम्य-भाव, समाधिभाव, वीतरागभाव, अद्वैतावलंबीभाव, चित्तनिरोधभाव, निजधर्म-भवदशा मुख्यनाम जानना। जो सम्यग्दृष्टि चउर्थेका है। तिसकै तो स्वानुभवका काल लघु अंतर्मुहूर्तताई रहै है। वह काल पीछे होइ है। तिसतै देशव्रतीका स्वानुभव

रहनेका काल बड़ा है। अरु थोरे ही काल पीछे होइ है। सर्वविरतिकै स्वानुभव दीर्घ अन्तर्मुहूर्ततई होइ है। ध्यानस्यौ भी होइ है। अति थोरे थोरे कालपीछे स्वानुभव हुवा ही करै, वारंवार अवरु सातमैं। तेई परिणाम पूर्वस्वानुभवरूप भए थे तेतौ स्वानुभव रूप रहै, पै तहांसौ मुख्यरूप कर्मधारासौ विकसि निकसि स्वरसस्वाद अनुभवरूप होते हैं ते चले। ज्यों ज्यों आगूँका (पहिलेका) काल आवै है त्यों त्यों अवरु अवरु परिणाम स्वस्वादरस अनुभवरूप होई करि बढ़ते चलै है। यौकरि तहांसौ अनुभव-दशाकी परिणाम बढ़नि करि पलटनि होइ है। क्षीणमोह अन्तलगु जाननी ॥

भो भव्य ! तू एक बात सुनि—हम एक अवरु कहैं हैं। यह स्वानुभवदशा स्वसमयरूप सुख है, शान्ति विश्राम है, स्थिररूप है, निजकल्याण है, चैन है, तृप्तिरूप है, समभाव है, मुख्य मोक्षराह है, ऐसा है। अरु यह सम्यक् सविकल्पदशा यद्यपि उपयोग निरमल है तथापि यहां चारित्र परिणाम परालंब अशुद्ध चंचल होतैं संतै सवि-

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ७६ ॥

कल्पदशा दुःख है। तृष्णातप्तकरि चंचल है। पुण्यपापरूप कलाय है। उद्वेगता है। असंतोषरूप है। ऐसे ऐसे विलापरूप है। चारित्र परिणाम दोन्योत अवस्था आपविषे देखी है। तिसरें भला यह जु तू स्वानुभवरूप रहनेका उद्यम राख्या करु। यह हमारा वचन व्यवहारकरि उपदेशकथन है। जेती जेती विशुद्धता थिरता गुणस्थान माफिक बढी तेता तेता सुख बढ्या। बारमैलगु कषाय घटनेतें थिरता बढी। मतिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमते स्वसंवेदन रस बढ्यो। स्वसंवेदन थिरता करि उपज्यो रसास्वाद स्वानुभव सो अनन्तसुख मूल है॥

सो अनुभव धाराधरजगै दुःख दावानल रंच न रहतु है। स्वानुभव भववासघटा भानवेको परम प्रचण्ड पवन मुनिजन कहतु है। अनुभव सुधापानकरि भव्य अमर अनेक भए। परमपूज्यपदको अनुभवही करै है। सब वेदपुराण याविनु निरर्थक है। स्थिति विस्मृति है। शास्त्रार्थ व्यर्थ है। पूजा मोहभजन है। अनुभवविना निर्वि-

प्रकार्य विघ्न है । परमेश्वरकथा सोभी झूठी है । तपभी झूठ है । तीर्थसेवन झूठ है ॥

तर्क पुराण व्याकरण खेद है । अनुभवविना ग्रामविषै गाय श्रान, वनमें हिरणादिज्यौं अज्ञानतपसी । अनुभवप्रसादतै नर कहूं रहौ सदा पूज्य है । अनुभव आनंद, अनुभव धर्म, अनुभव परमपद, अनुभव अनन्तगुणरससागर, अनुभवतै सिद्ध है अनुपज्योति अमिततेज अखण्ड अचल अमल अतुल अबाधित अरूप अजर अमर अविनाशी अलख अछेद अभेद अक्रिय अमूर्तिक अकर्तृत्व अभोक्तृत्व अविगत आनंदमय चिदानंद इत्यादि अनंत परमेश्वरका विशेषण सर्व अनुभवसिद्धि करतु है । तातै अनुभव सार है । मोक्षको निदान सब विधानको शिरोमणि, सुखको निधान अमलान अनुभव है । अनुभवी जीव मुनिजनके चरणारविंद इन्द्रादि सेवै हैं । तातै अनुभवकरि ये ग्रन्थ ग्रन्थनै अनुभवकी प्रशंसा कही है । अनुभवविना साध्यसिद्धि कहूं नाहीं । अनन्तचेतनाचिन्हरूप अनंतगुणमंडित, अनंतशक्तिधारक, आत्म-

पदको रसास्वाद अनुभव कहिये ।
वारंवार सर्व ग्रन्थको सार अविकार अनुभव है ।

है । अनुभव अविनाशी रसकूप है । मोक्षरूप अनुभव है । तत्त्वार्थसार अनुभव है । जगत उधारण अनुभव है । अनुभवतैं आन कोई उच्चपद नहीं । तातैं अनुभव सदा स्वरूपकौ करिये । अनुभवकी महिमा अनंत है कहाँलौ बताइये । आठकर्मप्रदेश परि आपणी थितिकरि बैठे सर्व पुद्गलका ठार है । तिनके विपाकके उदयकरि चिदविकार भया सो विकार जीवका है । वर्गणा नोकर्म द्रव्यकर्मरूप सब पुद्गल हैं । भावजीवके हैं । एकसो अठतालीस प्रकृति वर्गणा जड वर्णी है । उनके विपाक उदय व्यक्तता निमित्त पाय चिदविकारभया, सो विकारका स्वांग जीवनैं धन्या है । इस ज्ञेय रंजक अशुद्धता भाव उस शुद्धभावकी शक्ति अशुद्ध भई तब भया है । अशुद्धपरनिमित्ततैं उफटू ? मैल है । पर इसनैं कीया तातैं इसका है । इसका मूलभाव नहीं, काहेतैं बादरकी

घढा लाल श्याम पीत हरितरूप भये आकाश वैसा न भया । जैसे स्तनपरि मांटी बहुत लपटी परि स्तनका प्रकाश मांटीके लपटें न गया । अंतरशक्ति ज्योंकी त्यों है । त्यों आतमाके अशुद्धभाव भयें आतमाका दरसन ज्ञानकी अंतर ज्योंकी त्यों है । पर पुद्गलका नाट बहुत बन्या है । सो पुद्गलका खेल जानु, तेरा आतमा खेल मति जानै ॥

कहिये हैं दशधा परिग्रह क्षेत्र, वाग, नगर, कूप, वापी, तडाग, नदी आदि जेतके पुद्गल माता पिता कलब पुत्र पुत्री बंधू बंधू स्वजनादि जावंत सर्प सिंह व्याघ्र गज माहिषादि जावंत दुष्ट अक्षर शब्द अनक्षर शब्दादि वाग गन्धग स्नान भोग संयोग वियोग क्रिया जावंत परिग्रह मिलाप सो बडा परिग्रह नाश सो दलिद्रादि क्रिया जावंत चलना बैठना हलना बोलना कांपनादि क्रिया जावंत लडना भिडना चढना उतरना वाचना खेलना गावना बजावना आदि जावंत क्रिया सर्व पुद्गलका खेल जानु ।

नर नारक तिर्यञ्च देव इनके विभव भोगकरण विषयरूप इन्द्रियनिकी क्रियादि सब पुद्गल नाट है। द्रव्यकर्म नोकर्मादि सब पुद्गल अखारा है। तामें तू चिदानंद रंजन होय है। अपनी जानै है। अपने दर्शनज्ञानचारिवादि अनंत अखारा गुणका परिणति पातरा नाचै स्वरूपरस उपजावै जेते गुणकौं वेदै द्रव्य वेदै सब भाव भये सत्ता मृदंग प्रमेय ताल इत्यादि सब निज अखारा है। ऐसे अपने निज अखारै रंजि, परके अखारै ममत्व कीया जिसका जन्मादि दुःखफल अपनां माया अपने सहजा-स्वादी होय परप्रेम मिटाय अचेतना प्रकाशका विलासरूप अतीन्द्रियभोग भोगि कहा झुठे ही सुनै जडमैं आपा मानै है। अर परकौं कहै—हमकौं दुःख यह दे है। यामैं शक्ति दुःख देनेकी नाहीं। विरानै सिर झूठा उलाहना दे है अपनी हरामजादगीकौं न देखै है। अचेतनकौं नचावत फिरत है, सो लाशहु न आवत है। मडैसौं सगाई करि अब हम इससौं ब्याह करि संबंध करैगे सो ऐसी वात लोकमैं न्हि निघ है। तुम तौ

अनंतज्ञानके धारी चिदानंद है । अनादि झूठी विडंबना जइसौ आपा माननैकी भेटौ । तुम एक परमानि छांडौ । पराचरणहीतैं तुमारा दर्शन ज्ञानमैं लाभ भया है । देखनै जाननैतैं जो बंध, तातो सिद्ध लोकालोककौ देखत है, जानतैं हें तेहू बंधते तिसतैं परिणाम तादात्म्य नाहीं । तातैं सिद्धभगवान न बंधै हैं । परिणामही, संसार परिणाम ही मोक्ष मानि परिणामकै है रागद्वेष मोह परिणाम करै । इनका जतनहू परणाम करै ज्ञानदर्शनमैं रागदोष नहीं, वै देखेवे जानवे मात्र है । इसकी विकारतातैं वैहू विकारी कहावे । देखना जानना राग द्वेष मोह करि होय तो बंधै, राग द्वेष मोह न होय तो न बंधै । इस परिणाम शुद्धता अभव्यकै न होय तातैं ज्ञानदर्शन शुद्ध न होय । भव्यकै परिणाम स्वरूपाचरणके होय तातैं ज्ञानदर्श शुद्ध होय । उक्तं च पद्मनन्दि-पचीसीमध्ये,—

“स्वानुष्ठानविशुद्धे दृग्बोधे जायते कुतो जन्म ॥

॥ अनुभवमकारा ॥ पान ८२ ॥

उदिते गभस्तिमालिनि किं न विनश्यति तमो नैश्यम् ॥ १ ॥
कोई प्रश्न करे—वस्तु देखिये नहीं जानिये नहीं परिणाम वामें कैसे दीजिये ?
ताको समाधान— पर दीखता है जानिये है सो परका देखनेवाला उपयोग है तो
देखै है, ज्ञान है तो जानै है । उपयोग तो ठावा (?) भया नास्तिरूप हुवा, जो
यह उपयोगे गहखां तिसहीमें परिणाम धरि थिरता धरि आचरण करि विश्राम गहूं ।
येताही परिणाम शुद्ध करनेका काम है । उक्तं च—“उववोगमर्त जीवो” इतिवचनात्
जातें परिणाम वस्तु वेद्यस्वरूपलाभ ले, वस्तुमें लीन होय है । स्वरूपनिवास परिणाम
ही करै हैं । उत्पाद व्यय ध्रुव परिणाममें आया, उत्पादव्ययध्रुवमें सत् भया । सत्
तामें स्वरूप सब आया, तातें परिणामशुद्धतामें सब शुद्धता आई ॥ उक्तं च—
जीवो परिणामयदा सुहेण असुहेण चासुहो असुहो ।
सुद्धेण तदा सुद्धो परिणामो होदि सम्भावो ॥

परिणाम सर्व स्वस्वरूपका है। पराचरण दोय भेद है—द्रव्यपराचरण—भावपराचरण, नौकर्म उपचार पराचरण है, परंपराकरि अनादि उपचार है ॥ वा देहका धारण सादि उपचार है। द्रव्यकर्मजोग अनादि उपचार है। भावकर्म अशुद्धनिश्चयनकरि है। द्रव्य-कर्मनौकर्मका द्रव्यपराचरण उपचारतैं है। भावपराचरण रागद्वेषमोह है तिसका आचरण है। कोई प्रश्न करै—तु रागादि जीवके भाव हैं परभाव सपरसादि हैं। रागादिकों पर-भाव क्यों कहे? ताका समाधान—शुद्धनिश्चयनय रागादि जीवके नहीं, येभी पर हैं, काहेतैं भावकर्म ये हैं इनके नाशतैं मुक्ति है। पर हैं तौ छुटै हैं। तातैं परहीं कहिये। जब यह रागादिकों अपने न मानेगा भवबंधपद्धति मिटैगी। तिसतैं पररागादि तजि शुद्ध दर्शन ज्ञान चारित हैं। आप जानि ग्रहै यह मुक्तीका मूल है। परिणाम जीवै कौंधुकै जैसा है। तातैं परबोर छोडि स्वरूपमें लगाय निज परिणाम हैं। उत्पादव्यय-ध्रुव षट्गुणी वृद्धि हानि अर्थक्रियाकारक परिणामतैं सधै हैं ॥

॥ आगें देवाधिकार लिखिये हैं ॥

काहैंतें देवतैं परममंगलरूप निजानुभव पाईये हैं । तातैं देव उपकारी हैं । देव परमात्मा है । अरहंत परमात्मा साकार है । शरीरयुक्त हैं । तातैं सिद्ध निराकार हैं । किंचून चरमशरीरतैं आकार तातैं साकार भी कहिये हैं । अरहंतकै अघातिकर्म रहे तातैं बाह्य विवक्षामैं व्यापि गुण व्यक्त न भये । ज्ञानमें सब व्यक्त भये । सो कहिये हैं । नामकर्म मनुष्य गतिरूप है । तातैं सूक्ष्म बाह्य नहीं । केवलज्ञानमें व्यक्त है । वेदनी है तातैं बाह्य अबाधित नहीं । अंतरमें ज्ञानमें व्यक्त है । अवगाह बाह्य नहीं । आपतैं ज्ञानमें व्यक्त है । अगुरुलघुगोत्रतैं बाह्य व्यक्त नहीं, ज्ञानमें है । यह अघातिहूतैं व्यक्त नाव न पाया । नामस्थापनाद्रव्यभाव पूज्य हैं अरहंतके नाम लेतही परमपदकी प्राप्ति होई ॥ उक्तं च—

जिन सुमरो जिन चिंतवो जिन ध्यावो सुमनेन ॥

जिन ध्यायंतहि परमपय लहै इक क्षणेन ॥ १ ॥
जिनथापनातैं सालंबध्यानकरि निरालंबपद पावै है । कैसी है थापना ॥ उक्तं च

किं ब्रह्मैकमयी किमुत्सवमयी श्रेयोमयी किं किमु ।

ज्ञानानन्दमयी किमुन्नतमयी किं सर्वशोभामयी ॥

इत्थं किं किमिति प्रकल्पनपरैस्त्वन्मूर्तिरुद्धीक्ष्यता ।

किं सर्वातिगमेव दर्शयति स ध्यानप्रसादान्महः ॥ १ ॥

मोहोद्दामदवानलप्रशमने पाथोदवृष्टिसमः ।

स्रोतोनिर्झरणीसमीहतविधौ कल्पेन्द्रवल्ली सताम्र ॥

संसारप्रबलान्धकारमथने मार्तण्डचण्डद्युति-

र्जनी मूर्तिरुपास्यतां शिवसुखे भव्यः पिपासास्ति चेत् ॥

स्वसंवेदनरूप बीतरागमुद्रा देखि स्वसंवेदभावरूप अपना स्वरूप विचारै- पूर्व

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ८६ ॥

ये सराग थे, राग भेटि वीतराग भये। अब मैं सराग हौं। इनकीज्यों राग भेटौं तौ वीतराग भेरा पद मैं पावौं। निश्चयमें हूं वीतराग हौं ॥ उक्तं च--

“ पिच्छहु अरहो देवो पच्छरघडियो हु दरसय मरगं ” इतिवचनात् ॥ इस स्थाप-
नाके निमित्ततैं तिहुंकाल तिहुंलोकमें भव्यजीव धरम साधै हैं। तातैं स्थापना परम
पूज्य है। द्रव्यजिन् द्रव्यजीव सोहु भाव पूज्य हैं। तातैं पूज्य भावि नय। अथवा
तीन कल्याण तक द्रव्यजिन हैं। सो पूज्य हैं। भावजिन समवसरणमण्डित अनंत-
चतुष्टय युक्त भवनकों त्यारै। दिव्यध्वनितैं उपदेश देयकरि साक्षात् मोक्षमार्ग वर्ण करै
परमात्मा भावजिन कहिये ॥ आगैं सिद्धदेवका वर्णन कीजिये हैं ॥ सिद्ध निराकार
परमात्मा है। अनंतगुणरूप भये अपने अनंतसुखकों गुणनिकरि पर्यायतैं वेदि, द्रव्य-
गुणकों अरु भोगवै हैं। लोकशिखर परि तिष्ठै हैं। षड्गुणी वृद्धि हानि अर्थ पर्याय
किंचून चरमदेहतैं प्रदेशनिकी आकृति आकार व्यंजनपर्याय ॥ उक्तं च---

मय नग योग लि मृसिमैं जार स अंबर होय ।
पुरुषाकारैं ज्ञानमय वस्तु प्रमानौं सोय ॥
देवकौं जानै तब स्वरूप अनुभव होय है । इति देवाधिकार ।

॥ अथ ज्ञानाधिकारः ॥

ज्ञान लोकालोक सकलज्ञेयकौं जानै निश्चय जाननरूप स्वरूप है ऐसी ज्ञानकी शक्ति है । संसार अवस्थामैं अज्ञानरूप भई है । तौऊ निश्चय निज शक्ति न जाय है । बादरघटोके आवरणतैं सूर्यतेज न जाय, त्यों ज्ञानावरणतैं ज्ञान न जाय आवस्था जाय नाश न होय । ज्ञान सब गुणमैं बड़ा गुण है । इसमैं अनंतगुण व्यक्त जानै ॥ ज्ञानविना ज्ञेय न जान्या पस्या । ज्ञेयविना जानवा योग्य कछु भी न होता यातैं ज्ञान प्रधान है । अनंतगुणात्मवस्तु तौऊ ज्ञानमात्र ही है । आचार्य बहु ग्रन्थनमैं आतमा ऐसौ कह्यौ । काहैंतैं “लक्षणप्रसिद्ध्या लक्ष्यप्रसिद्धयर्थम्” जैसे

मन्दिर श्वेत कहिये मन्दिर श्वेतादि बहुगुण धरै हैं । तथापि दूरितैं श्वेतगुणकरि भासै तातैं मुख्यतातैं श्वेत मन्दिर कहिये । प्रसिद्ध लक्षण आतमामैं ज्ञान है, तातैं ज्ञान-मात्र आतमा कह्यौ । एक एक गुणकी अनंत शक्ति अनंतपर्याय गुणकी एक अनेक भेदादिसब जानै, ज्ञानविना वस्तुसर्वस्व निर्णयरूप स्वरूपकून जानै, तातैं ज्ञान प्रधान है । मतिज्ञानादि ज्ञानके पर्याय हैं । सो क्षयोपशम ज्ञान अंश भेद शुद्ध भये । तातैं पर्याय लोकालोक जानैं ज्ञेयाकार ज्ञानपर्यायकरि है । ज्ञेय नाश होत परि ज्ञाननाश नाहीं तातैं जेतौ ज्ञेय तेतौ ज्ञान मेचक उपयोगलक्षण ज्ञान उपचारतैं ज्ञानमें ज्ञेय है । तातैं वस्तुस्वरूपमें ज्ञेयकै विनाशता, ज्ञानविनाश नाहीं ॥

कोई तर्क करै— ज्ञानमें सकलज्ञेय उपचारतैं हैं । तौ सर्वज्ञपद उपचरित भयो उपचार झूठ है । तो कहा सर्वज्ञपद झूठ भयो ? ताको समाधान—जाँके उपचार-हीमात्रमें लोकालोक भास्यौ तौ वाकै निश्चयज्ञानकी महिमा कौन कहै ? यह ज्ञान

स्वसंवेदनही भया सबकौ जानै, आपके जानै परका जानना थपै, स्वका जानना थपै है। परकी उपेक्षा आप है आपकी उपेक्षा पर है। विवक्षातै वस्तुसिद्धि है, ज्ञानतै स्वरूपानुभव है। यह अज्ञेयाधिकार लिखिये। “ज्ञातुं योग्यं ज्ञेयं” ज्ञेय जानवेयोग्य पदार्थकौ कहिये। सो पदार्थकी तीन अवस्था हैं। द्रव्य अवस्था—गुणअवस्था—पर्यायअवस्था ॥ द्रव्यअवस्था मुख्य है। काहेतै? पदार्थ द्रव्यअवस्था न धरै तौ द्रव्यविना गुणपर्यायका व्यापना न होय, तब द्रव्य न होय, तब पदार्थ न होय, तातै द्रव्यअवस्था मुख्य है। पीछै गुणअवस्था है। काहेतै? गुणविना द्रव्य न होय। तातै “गुणसमुदायो द्रव्यं” ऐसा जिनवचन है। पर्यायअवस्था न होय तौ वस्तुकौ परणावै कुन?। उत्पाद व्यय भ्रुव न सधै, षड्गुणी वृद्धिहानि न होय, तब अर्थपर्यायका अभाव भये, वस्तु अभाव होय, तातै पर्यायअवस्थातै सर्वसिद्धि है ॥

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ९० ॥

द्रव्य गुणपर्यायकों व्यापै, गुण द्रव्यपर्यायकों व्यापै, पर्याय गुणद्रव्यकों व्यापै, तीनों अवस्था पदार्थकी है। पदार्थ सत्त्वअवस्थाकरि अस्ति है, परचतुष्टय अवस्थायै नास्ति है, गुणअवस्थायै अनेक है, वस्तुअवस्थायै एक है, गुणादिभेदकरि भेदरूप है, अभेदवस्तुस्वरूपकरि अभेद है, द्रव्यकरि नित्य है, पर्यायकरि अनित्य है, श्रयतै शुद्ध है, सामान्यविशेषरूप वस्तुरूप है, वस्तुत्व है, द्रव्यके भावकों धरै शुद्धिनि- है, प्रमेयके भावकों धरै प्रमेयरूप है, अगुरुलघुके भावकों धरै अगुरुलघु अवस्था है, प्रदेशकों धरै प्रदेशरूप है, अन्यत्वगुणलक्षणभेद अन्यकरि अन्यत्व है, स्वरूपकरि अन्य है, नानापदार्थतै अन्य है, द्रव्यत्व है, पर्यायत्व है, सर्वगत अप्रदेशत्व है, मूर्त है, अमूर्त है, सक्रिय अक्रिय चेतन अचेतन कर्तृत्व अकर्तृत्व भोक्तृत्व अभोक्तृत्व नाम उपलक्षण क्षेत्र स्थिति संथान सरूप फल द्रव्य क्षेत्र काल भाव संज्ञा संख्या लक्षण प्रयोजन तत्त्वभाव अतत्त्वभाव सप्तभंगरूप अन्योन्यगुणकरि सिद्धिगतहेतुत्व स्थितिहेतुत्व

अवगाहेतुत्व वर्तनाहेतुत्व चेतनत्व मूर्तत्व विशेषगुण पदार्थ सामान्यविशेष स्वभाव धरे हैं । नानापदार्थ एकपदार्थकरि जैसी विवक्षा होय तैसी समझि लेणी ॥

पदार्थ सत्तारूप है । सत्ता- महासत्ता अवान्तरसत्ता दोय भेद लीया छे । सत्त्वं असत्त्वं त्रिलक्षणं अविलक्षणं एकत्वं अनेकत्वं सर्वपदार्थस्थितत्वं एकपदार्थस्थितत्वं विश्वरूपं एकरूपं अनंतपर्यायत्वं एकपर्यायत्वं द्रव्य ऐसा द्रव्यभाव सर्व द्रव्यमें महासत्ता जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य स्वरूपरूप वर्तै । अवांतर सत्ता द्रव्यसत्ता, अनादिअनंतपर्यायसत्ता, सादिसांतस्वरूपसत्ता तीन प्रकार । द्रव्यस्वरूपसत्ता गुणसत्ता पर्यायसत्ता गुणसत्ताका अनंतभेद ज्ञानसत्ता द्रसनसत्ता अनंतगुणसत्ता पृथक्भेद न छे । अनन्यत्वभेद छे । जेते कछु निज द्रव्य गुण पूर द्रव्यगुण हैं । जेतीक सब द्रव्यनकी अतीत अनागत वर्तमानपर्याय तीनकालके नवपदार्थ द्रव्य गुण पर्याय उत्पाद व्यय भुव सब ज्ञेयनाम आगममें कहा है । ज्ञानगोचर जो कछु होय, सो सब ज्ञेयनाम जानौ “ ज्ञातुं

योग्यं ज्ञेयं ” यह ज्ञेयाधिकार ज्ञेय जानि परकों व्यंजन करें निज ज्ञेयकों जानि स्वरूपानुभव करणां ॥

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ९२ ॥

॥ आगै निजधर्माधिकार कहिये हैं ॥
निजधर्म वस्तुस्वभाव सो आतमा निजधर्म निर्विकार सम्यक् यथारूप अनंत-
गुणपर्यायस्वभाव सो धर्म कहिये । निश्चयज्ञानदर्शनादि अपना धर्म है । जीव निज-
धर्म धरतही परमशुद्ध है । निज कहिये आप, तिसका धर्म कहिये स्वभाव, सो
निजधर्म कहिये । अपने स्वभावरूप सब पदार्थ हैं । उनका धर्म उनका निजधर्म है ।
आतमामैं है । ताँतें दर्शन ज्ञानहीकों निजधर्म ऐसा मति कहौ । ताँको समाधान —
स्वभाव तौ सब सबही कनै है । उनका धर्म उनका स्वभाव यह तौ यौही है । परितारण
धर्म, सर्जीवधर्म, प्रकाशधर्म, उनके धर्मकों प्रगटै । ऐसा धर्म परमधर्म, हितरूपधर्म,
असाधारणधर्म, अविनाशी सुखरूपधर्म, चेतनाप्राणधर्म, परमेश्वरधर्म, सर्वोपरिधर्म,

अनंतगुणधर्म, शुद्धस्वरूपपरिणतिधर्म, महिमा अपारधारक धर्म, निजशुद्धात्मस्वभावरूपधर्म, सो निजधर्म है ॥ इनका विशेषभेद कहिये हैं ॥

यह अनादिसंसारमें जीव कर्मयोगतैं जन्मादिदुःख भोगवै हैं । इस परधर्मको निजधर्म मानै हैं । तातैं दुःख पावै हैं । यह तौ सांच है । काहेतैं? जो सिरदार प्रधान पुरुषको निंद्यमैं गिणै सो दण्ड है । निंद्यदेहमें चेतनधर्म मानै, सो दुःख पावैही पावै । शुद्धचैतन्यधर्मको जब धर्म जानै तब संसारतारणधर्म अनंतचेतनारूपधर्म तातैं सुजीवधर्म स्वज्ञेय प्रकाशै, यातैं प्रकाशधर्म सब द्रव्यनिके धर्म प्रगट यानैं कीये उनके धर्मको प्रगटै ॥ सबतैं उत्तम यातैं परधर्म धर्म निजरूपतैं अनंतसुख होय । यातैं हितधर्म औरमें न पाइये । यातैं असाधारणधर्म अविनाशी आनंद सहजरूप तातैं अविनाशी सुखरूपधर्म चेतनाप्राण धरै, तातैं चेतनाप्राणधर्म परमेश्वर सहजरूप ऐसे स्वभावमय परमेश्वर धर्म सबतैं उत्कृष्ट है । तातैं सर्वोपरि धर्म अनंतगुण है स्वभाव

॥ अनुभवमकाश ॥ पान ९४ ॥

जाकौ ताँतै अनंतगुणधर्म शुद्धस्वरूप सदा परणमै शुद्ध भयें । ताँतै शुद्धस्वरूपपरि-
णतिधर्म अपारमहिमाकौ लीयै । ताँतै अपारमहिमाधारक धर्म अनंतशक्तिकौ धरै ॥
अनंतशक्तिरूप धर्म अनंतपर्याय एक गुणकी, ऐसे अनंत गुण अनंतमहिमा-
कौ धरै, सो निजधर्मकी महिमा कहाँलौ कहिये ? । एकोदेश होयही होय । ताँतै जानियौ परधर्म-
तैं अनंतदुःख, निजधर्मतैं अनंतसुख ॥ याँतै निजधर्मकौ धारि अपना परमेश्वरपद
प्रगट कीजै । निजधर्मकी धारणा अनुभवतैं होय । निजधर्म भये अनुभव होय । याँतै
अनुभवसार सिद्धिनिमित्त निजधर्म अधिकार कहा ॥

॥ आँगै मिश्रधर्म अधिकार कहिये हैं ॥
सो मिश्रधर्म अंतरात्माकै है, सो काहेतैं सम्यक् स्वरूप श्रद्धान जेते कषाय
अंश हैं तेते रागद्वेषधारा है । आत्मश्रद्धाभावमैं आनंद होय है । कषाय सर्वथा न

गई मुख्य श्रद्धाभाव गौण परभाव एक अखण्ड चेतनाभाव सर्वथा न भया, ताँतै मिश्रभाव है। अज्ञानभाव बारमैतक एकोदेश ज्ञानचेतना है। अरु कर्मचेतनाभी है। ताँतै मिश्रधारा है। स्वरूपउपयोगमै प्रतीत भई। परि शुभकर्मकी धारा वहै है। तिनसौ रंजकभाव कर्मधारामै है। परश्रद्धानस्वरूप सुक्तिकारण है। भववाधा मेट-नकौ समर्थ है। ऐसा कोई कर्मधाराका हुनिवार आप है। प्रतीतिमै स्वरूप ठावा कीया है। तौहू सर्वथा न्यारा न होय है, मिश्ररूप है। कोई प्रश्न करै—कि, सम्यक्-गुण सर्वथा क्षायिकसम्यग्दृष्टिकै भया है वा न भया है? ताँकौ समाधान कहौ—जो कहुगे, सर्वथा भया, तौ सिद्ध कहौ। काहेतै? एकगुण सर्वथा विमल भये सब शुद्ध होय सम्यक्गुण सब गुणमै फैल्या है, सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सब गुण सम्यक् भये। सर्वथा सम्यग्ज्ञान नहीं, एकोदेश सम्यग्ज्ञान है। सर्वथा ज्ञान सम्यक् होता तौ सर्वथा सम्यक् गुण शुद्ध होता, ताँतै सर्वथा न कहिये। जो किंचित् सम्यक्गुण

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ९६ ॥

शुद्ध कहिये, तौ सम्यक्गुणका घातक मिथ्यात्व अनंतानुबंधी कर्म था सो तो रह्या ।
जिस गुणका आवरण जाय सो गुण शुद्ध होय । तौतैं किंचत् हूं न वणै ॥
सम्यक् न भये । आवरण गयेतैं सम्यक् सब गुण सर्वथा न भये तौतैं परमसम्यक् नाहीं ।
सबगुण साक्षात् सर्वथा शुद्ध सम्यक् होय तब परमसम्यक् ऐसा नाम होय ॥ विवक्षाप्र-
माणैतैं कथन प्रमाण है । तिस दर्शनपरि पौद्गलिक स्थिति जैसैं नाश भई तबही इस
जीवका जो सम्यक्त्वगुण मिथ्यात्वरूप परणम्या था, सोई सम्यक्गुण संपूर्ण स्वभावरूप
होय परणम्यां प्रगट भया । चेतन अचेतनकी जुदी प्रतीतिसौ सम्यक्गुण निज जाति
स्वरूप होय परणम्या, तिसका लक्षण ज्ञानगुण अनंतशक्ति न करि विकाररूप होय
रह्या था, तिन गुणकी अनंतशक्तिविषैं केतेक शक्ति प्रगट भई । सामान्यसौ नाम
भयो । मति श्रुति कहिये । अथवा निश्चयज्ञान श्रुतपर्याय कहिये । जघन्यज्ञान कहिये ।

अवर सर्वज्ञानशक्ति रही, ते अज्ञान विकाररूप वर्ग है। इन विकारशक्तिनको धर्म-धारारूप कहिये। तैसेही जीवकै दर्शनशक्ति अदर्शनरूप होयगी। तैसेही जीवकै चारित्रकी केतेक चारित्ररूप केतेक अवरविकाररूप हैं। ऐसे भोगगुणकी सब गुण जेतेक निरावरण सो शुद्ध। अवर विकार सो सर्व मिश्रभाव भया। प्रतीतिरूप ज्ञानमें सर्वशुद्ध श्रद्धाभाव भया। परि आवरणज्ञानका तथा और गुणका लग्या ह। तातें मिश्रभाव है स्वसंवेदन है। परि सर्वप्रत्यक्ष नाहीं। सर्वकर्मअंश गये शुद्ध है। अघाति रहै शुद्ध है। घातियानाशतें परि सकलपरमात्मा है। प्रत्यक्ष ज्ञान तौ भया है ॥

सिद्ध निकल सकलकर्मरहित परमात्मा है। अंतर आतमाक ज्ञानधारा कर्मधारा है। कोई प्रश्न करै—जो वारमें दोय धारा कि एक ज्ञानधाराही है? जो ज्ञानधाराही है, तौ अंतर आतमा मति कहौं। जो दोय धारा है तौ वारमें मोहक्षय भयो राग द्वेष मोह सब गये दूसरी कर्मधारा कहां रही? ताकौ समाधान—ज्ञान परोक्ष है केवलज्ञाना-

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान ९८ ॥

वरण है। ताँतैं अज्ञानभाव वारमैतक है। ताँतैं अंतर आतमा है। प्रत्यक्षज्ञानविना परमातमा नाहीं। कषाय गये परि अज्ञानभाव है। ताँतैं परमात्मा नाहीं अंतर है, वारमैं अज्ञान कहा? ताँकौ समाधान—केवलज्ञानविना सकलपर्याय न भासै सोही अज्ञान निज प्रत्यक्षविनाहू अज्ञान है। ताँतैं अज्ञानसंज्ञा भई। यह मिश्रअधिकार वस्तु निज अपनां स्वरूप अनंतगुणमय तिनमैं दर्शन ज्ञान चारित्र प्रधान काहेतै? देखन जानन परिणवनकरि, वेदनतैं रसास्वाद अनुभव होय, तहां सुख कित प्रगटै, तिनकरि चेतना जानी परि, तब चेतनसत्ता, चेतनवस्तुत्व, चेतनद्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व ये गाये। ताँतैं दर्शन ज्ञान चारित्र जीववस्तुका सर्वस्व है। द्रव्य गुण पर्याय ये वस्तुकी अवस्था है। अनादिनिधन वस्तु अखण्डचेतनारूप वर्तै है। परि अनादिकर्म-जोगतैं अशुद्ध होय रही है। सुखनिधानकौ न जानै है, तौऊ शुद्धस्वरूप है ॥

जैसे काहूँ कोई एक ज्ञानवान पुरुषको पूछा— हमको शुद्धचेतनकी प्राप्ति बताओ ॥ तब ता पुरुषने कहा एक अमुका ज्ञानवान है तापासि जावो, तुमको वो बतावैगा, प्राप्ति करैगा । तब वो गयो । जाय, प्रश्न कियो—हमकुं चेतनकी प्राप्ति करौ । तब तासौ कह्यो, जु तुम एक दरियावमें मछ रहै है, तासमीप जावो । तुमको वो मछ चैतन्यप्राप्ति करैगो । तब वाके उपदेशसौ वो नर ता मछसमीप गयो, जाय प्रश्न कीयो, हमको शुद्धचेतन्यकी प्राप्ति करौ । तब मछ एसौ वचन कह्यो, हमारौ एक काम है, सो पहलै करो, तौ पीछे तुमको चिदानंदमें लीन करै । तुम बडे संत हो, हमारो कार्य काहूँ अबतक न कीयो, तुम पराक्रमी दीसौ हो । तातैं यह नियम है, हमारो काज कीयां, अवश्य तुमारो काज करैगे । ठीक जानौ तब वो पुरुष बोल्या, तुमारो कारिज करैगौ संदेह नाहीं करौ । तब मछने वासौ कहाँ, हम बहोत दिनके तिसाये या दरियावमें रहै हैं । हमारी तृषा न गई । पाणीको जोग न

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान १०० ॥

जुस्यौ ! कहैंसें जतनकरि जल ल्यायो, तुम बड़ो उपकार करौ, हमारी तृषा भेटौ,
महाजनकी चाल है परदुःख भेटै । तातैं यह उपगार करौ हम तुमकौं चिदानन्द
प्रत्यक्ष दिखाई प्राप्ति करैगे ॥

तब वो पुरुष बोल्यौ तुम ऐसैं काहे कहौ । जलसमूहमांहि तुम सदाही रहौ
हौ, ऐसैं मति कहौ, जो, जल लावो, दरियावोर देखौ, यह जलसौं प्रत्यक्ष भस्यौ
है । तब मछ बोल्यौ, ऐसैं तुम कहत हौ, सो यह बात तुम मानत हौ, तौ तुम
चिदानन्द प्रत्यक्ष हौ, वेतना है तौ ऐसो विचार तुमनें कीयो है । अब तुम हमकौं
पूछण आयै हौ, तातैं चिदानन्द हंस परमेश्वर तुमही हौ । संदेह त्यागौ थिर होइ ।
आपणौ चैतन्यस्वरूप अनुभवौ परके अनादि जोग में हूं आतमा जैसाका तैसा है,
परमैं अत्यन्त गुप्त भया है । तौऊ देखनैका स्वभाव न गया । ज्ञानभाव न गया ।
परिणाम न भया । परमैं बरननैतैं आवस्था, मलिन भया परि निश्चयकरि अखण्ड

स्वरूप चिदानंद अनादिका है, सो ज्योंका त्यों बणया है । कछु घट्या बढ्या नाहीं, भरमकल्पनातैं स्वरूप भुल्या है । परहींकों आपा मान्या तौ कहा भया ॥

जैसे कोई चिंतामणि करविषैं भूलि काचखण्डकों रतन मांनि चलावै तौ वह रतन न होय, चिंतामणिकौ काच जानै, तौ काच न होय, चिंतामणिपणा न जाय । तैसे आतमाकों पर जानै तौ पर न होय । परकों आपा जानै तौ आपा न होय । वस्तु अपने स्वभावका त्यजन काहू काल न करै । वस्तु वस्तुत्वकों न तजै । अपने द्रव्यकों न तजै । अपने प्रमाणकों न तजै । अपने प्रदेशकों न तजै । इत्यादि भावकों न तजै । तातैं अनादि प्रदेशप्रमाणकों न तजै । शुद्ध अशुद्ध दोऊ अवस्थामैं अपनी द्रव्य क्षेत्र काल भावकी दशा न तजै । महिमा अनंत अभिट है । काहूंपै न मैत्री जाय । निश्चयकरि जो है सो है । तातैं निजवस्तुका श्रद्धान ज्ञानादि अनंतगुणमात्र जांनि अनंतसुख करै, तौ सुखी होय । उपायतैं उपेय पाइये है । सो उपेय आनंदघन पर-

मातमा परमेश्वर है । ताकौ उपाय यातैं करणौ, जु, संसारअवस्थामैंही शरीरमें कर्मबंधतैं गुप्त भयो परभावनातैं दुःखी भयौ अपनौ परमेश्वरपद न पायो । ताकौ उपाय होय तौ उपेय पाइये, सो उपाय कहिये हैं ॥

उपाय अपने स्वरूप पावनेका अपना उपयोग है । और उपाय तप जप संयमादि शुभके हैं । जिनमें परमात्माकी भक्ति शुभपरि प्रतीतितैं कारणभी है । कारण ध्यानतैं कार्यकी सिद्धि है । ग्रन्थ उपदेशभी कारण है । परि उपभोग आये शुद्ध है । तातैं उपयोगकी एकोदेश शुद्धकी चढनि ज्यौज्यौ होय तौत्यों मोक्षमार्गकौ चढे ॥ यह श्रीजिनेंद्रभगवानका निरावाध उपदेश है । सकल उपाधि अनादितैं लगी आई । जब उपयोग कर समाधि लागै, साक्षात् शिवपन्थ सुगम होय । अनेक संत स्वरूप-समाधि धरि धरि पार भये ॥

॥ अव कछुक समाधिवर्णन कीजिये हैं ॥

समाधि तौ प्रथम ध्यान भये होय है । सो ध्यान चिन्तानिरोध एकाग्र भये होय है । सो चिन्तानिरोध रागद्वेषके मिटि होय है । सो राग द्वेष इष्ट अनिष्ट समाज मिटे, मिटे है । ताँतैं जीव जे समाधिवांछक हैं, ते इष्ट अनिष्टका समागम मेडि रागद्वेष त्यागि चिंता मेडि ध्यानमें मन धरि थित्व स्वरूपमें समाधि लगाई निजानन्द भेटौ स्वरूपमें वीतरागताँतैं ज्ञानभाव होय तब समाधि उपजै । वह अपने स्वरूपमें मन लीन करै । द्रव्यगुणपर्यायमें परिणाम लीन लय समाधि ऐसी होय है ॥

इन्द्रादि संपदाके भोग रोगवत भासै । द्रव्य द्रवणतैं नाम पाईये है । गुणको द्रवै सो द्रवत्वलक्षण परिणाममें ताँतैं गुणद्रव्यमें परिणाम लीन होय । गुणद्रव्यमें द्रवत्व लक्षण है । तौ परिणामसौं द्रव्य गुण मिलि गये ताँतैं द्रव्यत्वकी एकोदेशता साधककै ऐसी भई जो परीषह अनेककी वेदनां न वेदै है । रसास्वादमें लीन आनंदरस तृप्ति भया । जब मन परमेश्वरमें मिलै लीन होय न निकसै परमानंद वेदै स्वरूप धारणा ॥

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान १०४ ॥

निरंतर जहां अचलज्योतिका विलास अनुभवप्रकाशमें भया उपयोगमें परिणाम लगे ज्यौज्यौ दर्शन ज्ञान चेतना स्वरूप अनूप अखण्डित अनंतगुणमण्डितकौ जानि रसास्वाद ले लौंल्यौ परविस्मरण होय पर उपाधिकी लीनता मिटै । समाधि प्रगटै । तब उत्कृष्ट सम्यक्प्रकार स्वरूपवेत्ता होय ॥ सम्यग्ज्ञान भये वस्तुकी महिमा जानै । जानतां आनंद होय । ज्ञान ज्ञानकौ जानै । ज्ञान दर्शनकौ जानै । ज्ञान सब गुणकौ जानै । द्रव्यकौ जानै पर्यायकौ जानै । ज्ञान एकोदेश भेद साधक ज्ञान जानै । ज्ञानकरि वस्तु जानतां परमपद पावै । कासा सुख (संपूर्णसुख) परोक्षज्ञानहीमें है । प्रत्यक्षप्रतीतिमें वेदै है । तहां आनंद ऐसा होय है ॥

संप्रज्ञात समाधिमें दुःखादिवेदना प्रत्यक्ष भये हू न वेदै । विधान स्वरूप वेद-नेका है । मन विकार विलय जेते अंशकरि गया तेती समाधि भई । सम्यग्ज्ञानकरि जेता भेद वस्तुका गुणनकरि जान्या तेता सुख आनंद बढ्या । विश्राम भये स्वरूप

॥ अनुभवप्रकाश ॥ पान १०५ ॥

थिरता पाय समाधि लागी ज्ञानधारा निरावरण होय ज्यौज्यौ निजतत्व जानै त्योंत्यों विशुद्धता केवलकरि ज्ञान परिणति परमपुरुषसौ मिली, निज महिमा प्रगट करै । तहां अपूर्व आनंद भावका लखाव होय तब समाधि स्वरूपकी कहिये ॥

तहां अनादि अज्ञानका भ्रमभाव आकुलतामूल था सो मिट्या, अनात्म अभ्यासके अभावतैं सहज पदका भाव भावत, भववासना विलावत, दरसावत परमपदका स्थान गुणका निधान, अनलाम भगवान सकल पदार्थका जाननरूप ज्ञानकी प्रतीति प्रमाणभावकर नवनिधान आदि जगतका विधान झंठा भास्या । तब प्रकाश्या आत्मभाव लखाव आपके तैं कीना, तब चेतनभाव लीना, शुद्धधारणा धरी, निजभावना करी, शिवपदकों अनुसरी, आनंदरससौ भरी, भवबाधा अबाधा जहां सदा मुदा सेती एती शक्ती बढाई, शिवसुखाई, चिदानंदअधिकारि, ग्रन्थग्रन्थनमैं गार्इ, सो समाधितैं पाईये है ॥

स्वरूपानंद पद भेदी समाधितै होय है । वस्तुका स्वरूप गुणके जानै तैं जानै ।
गुणका पुंज वस्तुमय है । वस्तु अभेद है । भेदगुण गुणीका गुणकरि भया । तातैं
गुणका भेद वस्तु अभेद जनावनैकौ कारण है ॥

वितर्क कहिये-द्रव्यका शब्द ताका अर्थ भावना भावश्रुत श्रुतमें स्वरूप
अनुभवकरण कहा । परमात्म उपादेय कहा । ताहीरूप भाव सो भावश्रुत रस पीव ।
अमरपद समाधितै है । विचार अनादि भवभावनाका नाश चिदानंद द्रव्य गुण
पर्यायका विचार न्यास जानि दर्शन ज्ञान वाणिगीकौ पिछानि, चेतनमें मग्न होता
ज्यौंज्यौं उपयोग स्वरूप लक्षणकौ लक्ष्य रसस्वाद पीवै, सो स्वपरभेद विचारने सार
पद पाय समाधि लागी । अपार महिमा जाकी परमपद सो पाया । अनादि पर
इन्द्रियजनित आनंद मानै था, सो भेट्या । ज्ञानानंदमें समाधि भई वस्तु वेदी आनंद
भया । गुण वेदि आनंद भया । परिणति विश्राम स्वरूपमें लीया, तब आनंद भया ।

एकोद्देश स्वरूपानन्द ऐसा है ॥

जहां इन्द्रियविकार बल विलय भया है, मन विकार न होय, सुख अनाकुल रस रूप समाधि जागी है, “अहं ब्रह्म” “अहं अस्मि” ब्रह्म प्रतीति भावनमें स्थिरतामें समाधि भई; तहां आनन्द भया । सो केतेक काललघु ‘अहं’ ऐसा भाव रहै, फिर समाधिमें ‘अहंपणा’ तो छुटै, ‘अस्मि’ कहिये है, ऐसा भाव रहै तहां दर्शन ज्ञानमय हौं, मैं समाधि लागैं हौं, ऐसा हू रहणा विचार है ॥

इसके मिटै विशेष ऐसा होय जो द्रव्यश्रुतिवितर्कपणा मिटी । एकत्व स्वरूपमें भया एकताका रसरूप मन लीन भया समाधि लागी तहां विचारभेद मिट्या अनुभव वीतरागरूप स्वसंवेदनभाव भया । एकत्व चेतनामें मन लगा लीन भया । तहां इन्द्रियजनित आनन्दके अभावतैं स्वभाव लसावका रसास्वाद करि आनन्द बढ्या तहां फिर अस्मिभाव ज्ञानज्योतिमें था सोभी थक्या ॥

आगँ विवेकका स्वरूपका स्वरूप परिणति शुद्धीका ऐसा—जहाँ परमात्माका विलास नजीक भया तहाँ अनंतगुणका रस फिरि परिणाम वेदि समाधि लागी । निर्विकार धर्मका विलास प्रकाश भया । प्रतीति रागादिरहितभावनमें मनोविकार बहोत गया । तब आगँ अंश प्रज्ञात भया । तब परके जाननें विस्मरणभाव आया । तब केवलज्ञान अतिशीघ्रकालमें पावै । परमात्मा होय लोकालोक लखावे । ऐसी अनुभवकी महिमा मनके विकार मिटै है । सो मनविकार मोहके अभाव भयें मिटै है । सकलजीवकों मोह महारिपु है । अनादि संसारी जीवकों नचावै है । चउरासीमें अरु संसारी हर्ष मानि मानि भवसमुद्रमें गिरै हैं, परै हैं । आपाकों धन्य मानै है । देखो धिठौ ही भूलितै कैसी पकरी है । नैक निजनिधि अनंतसुखदायक कौन समारै है । यातैं इनही जीवनकों श्रीगुरुपदेशासृत पानक जोग्य है । इसतैं मोह मिटै अनुभव प्रगटै सो कहिये—

प्रथम श्रीजिनेन्द्रदेव आज्ञा प्रतीति करै, तहां पाछें भगवत्प्रणीत तत्व उपादेय विचारै । चेतन प्रकाश अनंतसुखधाम, अमल अभिराम, आत्माराम पररहित उपादेय पर हेय स्वपरभेदज्ञानका निरंतर अभ्यासतैं शुद्धचैतन्यतत्वकी लब्धि होय तिहितैं राग द्वेष मोह मिटै । कर्मसंवर होय । तब कर्म मिटवातैं निजज्ञानतैं निर्जरा होय । तब सकलकर्मक्षय निजपरिणाम हुवा भावमोक्ष होय । तब द्रव्यमोक्ष होयही होय । तातैं भेदज्ञान अभ्यासतैं परमपद सिद्ध सो भेदज्ञान उपजावाको विचार कहिये है । ज्ञानभाव जाननरूप उपयोग विभावभाव अपनैं जानै है । सो विभावके जाननेकी शक्ति आत्मा आपणी जानै । जानि रूप परिणमन करै । ज्ञानरस पीवै विभावनकौ न्यारे न्यारे जानै । विभावसुधाधारा ज्ञानरूपपरणाम सुधाधारा न्यारी । धारा दोन्यौ जानै । पुद्गल अंश आठ कर्म शरीरभिन्न है जड है । चेतन उपयोगमय है । इनमें विवेचन करै । जुदा प्रतीतिभाव करै प्रत्यक्ष जड रहै । सदा जाँमें चेतना प्रवेश न

होय । चेतना जड न होय यह प्रत्यक्ष सब ग्रन्थ कहै । सब जन कहै । जिनवाणी विशेषकरि कहै । अपने जानहुँ मैं आवै । शरीर जड अनन्ते त्यागे । दर्शनज्ञान सदा साथि रहवो कीया सो अबभी देखनें जाननेवाला यह मेरा उपयोग सोही मेरा स्वरूप है । इस उपयोगी अनउपयोगी विचारत प्रतीति जड चेतनकी आवै । विभाव कर्मचेतना है । कर्म राग द्वेष मोह भावकर्म तिसमें चेतना परणामै है । तब चिद्धिकार होय । इस चिद्धिकारको आपकरि आपा मलिन कीया है । केवलज्ञानप्रकाश आत्माका विलास है । तिसको न सभार है । मोहवशतें ग्रन्थकों सुणै है अरु जानै है । शरीर विनसैगा परिवार धन तिया पुत्र येभी न रहैगे । परि इनसों हित करै । नरकबंध परै । अनंतदुःखकारणकों सुख समझै ॥

ऐसी अज्ञानता मोहवशकरि है । तातैं ज्ञानप्रकाश मेरा उपयोग सदा मेरा स्वरूप है । सो सदा स्वभाव मेरा मैं हौं । कबहुं जिसका वियोग न होय अनंतमहिमा भण्डार

अविकार सारसरूप दुरनिवार मोहसौ रहित होय । अनुपम आनंदधनकी भावना करणी । अंश अंश परका जडवा परजीव सब स्वरूपसौ भिन्न जानि दर्शन ज्ञान चारित्रादि अनंतगुणमय हमारा स्वरूप है । प्रतीतिमें ऐसै भाव करत पर न्यारा भासै विभाव ऊफ़दमल आपके न रसतै भया । तिसतै भरम मेदि विभाव न होय स्वभाव प्रगटै अनादि अज्ञानतै गुप्तज्ञान भया । शुद्ध अशुद्ध दोऊ दशामैं ज्ञान शासती शक्ति कौ लीये चिद्विकारभाव क्रोधादिरूप भये होय सोही भाव मेदि निर्विकार सहजभाव आप आपमें आचरण विश्राम धिरतापरणामकरि करै । जो बाह्यपरिणाम उठै है सो अशुद्ध है सो परिणामका करणहार अशुद्ध होय है । बाह्य विकारमें न आवै । चेतना नांव उपयोगरूप अपनी इस ज्ञायक शक्तिकौ नीकै जानै तौ निजरूप ठावा होय । प्रतीति चेतन उपयोगकी करत करत परसौ स्वामित्व मेदि मेदि स्वरूप रसास्वाद चढता चढता जाय । तब शुद्ध उपयोग स्वरस पूर्ण विस्तार पावै । तब कृतकृत्य नि-

वैसे। यह श्रीजिनेन्द्रशासनमें स्याद्धादविद्याके बलतैं निजज्ञानकलाकौ पाय अनाकुल पद अपना करै। इहां सब कहनेका तात्पर्य यह है। जो परकी अपना पति सर्वथा भेदि स्वरससास्वादरूप शुद्ध उपयोग करिये। रागद्वेष विषमव्याधि है सो भेदि भेदि परम-पद अमर होय। अतीन्द्रिय अखण्ड अतुल अनाकुल सुख आप पदमें स्वसंवेदनप्रत्यक्ष-करि वेदिये। सकल संत मुनिजन पंचपरमगुरुस्वरूप अनुभवकौ करै हैं। तातैं महान् जन जा पंथकौ पकरि पार भये सोही अविनाशीपुरका पंथ ज्ञानीजननकौ पकरणा अनंतकल्याणका मूल है। परिणाम चेतनाद्रव्य चेतनामें लीन भयें अचलपद ज्ञान-ज्योतिका उद्योत होय है। एकोदेश उपयोग शुद्ध करि स्वरूपशक्तिकौ ज्ञानद्वारमें जाननलक्षण करि जानैं। लक्ष्यलक्षणप्रकाश आपका आपमें भासै। तब सहजधारा वाही। निजशक्ति व्यक्त करता करता संपूर्ण व्यक्त करता संपूर्णव्यक्तता करै। तब यथावत् जैसा तत्त्व है तैसा प्रत्यक्ष लखावै। देखो कोई भगल विद्याकरि

कांकरेनकों हरि हीरा मोती दिखावै है । बुहारीके तृणकों सर्पकरि दिखावै है ।
 तहां वस्तु लोकनकों साची दरसै । परि साची नाहीं । तैसे परमै निज मांनि आपकों
 सुख कल्पै सो सर्वथा झूठ है । सुखका प्रकाश परम अखण्ड चेतनाके विलासमै है ।
 शुद्धस्वरूप आप परकों (खौ) जना करै तब पावै । बारवार विस्तार कहिणां इस
 वाख्यौ आवै है । अनादिका अविद्यामै पगि रह्या है । मोहकी अत्यंत निविड गांठि
 पारी है । तातैं स्वपदकी भूलि भई है । भेदज्ञान अमृतरस पीवै । तब अनंतगुणधाम
 अभिरामकी अनंतशक्तिकौ अनंतमहिमा प्रगट करै । यह सब कथनका मूल है ।
 परपरिणाम दुःखधाम जानि भानि परकी भेदि स्वरस सेवन करणां अरु निदान परि दिष्टि
 कीजै । विनश्वर परदुःखमूलका सेवन अनादि कीया । जन्मादि दुःख भये । अब नरभवमै
 संत संगतैं तत्त्वविचार कारण मिल्या तौ फेरि कहा अनादिभवसंतानकी बाधाके करणहार
 परभाव सेइये । जिसतैं अखंडित अनाकुल अविनाशी अनुपम अतुल होय सोहू भाव

करिये । जो भाव मनोहर जानि मोह करै है । अपने आतमाकों झूठी अविद्याके विनोदकरि ठगै है । सकल जगत चारित्र झूठ वन्याही है, सो मोहतें न जानै है । जो स्वरसेवन तौ पर प्रीति रीति रंच हूं न धारै । अनंतमहिमाभाण्डारकों ज्ञानचेतनामें आपा अनादिका विचार करै । अनादिका पर आपा जानि दुःख सहा । अब श्रीगुरुनैं ऐसा उपदेश कहा है । तिसकों सत्यकरि मानतही श्रद्धातैं मुक्तिका नाथ होय है । तातैं धन्य सद्गुरु जिनोंने भवगर्भमेंसौं काढनेका उपाय दिखाया । तातैं श्रीगुरुकासा उपकारी कोई नाहीं । ऐसैं जानि श्रीगुरुके वचनप्रतीतितैं पार नहेना ॥

जेता अनुराग विषयनमें करै है, मित पुत्र भार्या धन शरीरमें करै है, तेता रुचि श्रद्धा प्रतीतिभाव स्वरूपमें तथा पंचपरमगुरुमें करै, तौ मुक्ति अतिसुगम होय । पंचपरमगुरुरागभी ऐसा है, जैसा संध्याका राग सूर्य अस्तताका कारण है प्रभातकी

संध्याकी ललाई मूर्यउदयकों करै है। तातैं विविध परमगुरुविना शरीरादि राग केवल ज्ञानकों अस्तताकों कारण है। पंच परमगुरुका राग केवलज्ञान उदयकों कारण है। तातैं विशेषकरि परमधर्मके दाता परमधर्मका अनुभवाग परमसुखदायक है ॥ अर्थ अनंत अनर्थकों करै, सो किसही अर्थि नहीं, अर्थ सोही परमार्थ साधै। तिसकरि कामसौं किस काम निजकामनासैं काम सोही सुकाम सुधरै। धर्म मिथ्यारूप अनंतसंसार करै, सो कहा धर्म? सर्वज्ञप्रणीत निश्चय निजधर्म व्यवहार रत्नत्रयरूप कारण। मोक्ष सोही फेरि कर्म न बंधै, ऐसा विचारणा—जैसैं दीपक मंदिरमें धरैतैं प्रकाश होय तौ सब सूझै, तैसैं ज्ञानीको ज्ञानप्रकाशसौं सब सूझै ॥

कैसैं ज्ञानकरि विचारै, शरीरमें चेतन है, दिष्टिद्वारकरि देखै है। ज्ञानद्वारकरि जानै है। अपने उपयोगकरि आप चेतन हौं। आपा एसैं जानै देहमें देहकों देखने-हारा मेरा स्वरूप चेतनरूप है। तौ जडकों चलावै है, चेतनप्रेरक है। अचेतन अनु-

पर्योगी जड न देखै न जानै । यह तौ प्रसिद्ध है, जो देखै जानै । शरीर तौ गत्यंतर जीव होय, तब शरीर क्यों न देखै ? तातैं यह देखनै जाननै करि आपा चेतनरूप प्रत्यक्ष ठावा करि स्वरूपकौ चेतन मानि अचेतनकै अभिमान तजनां मोक्षका मूल है ॥

शरीरवासनाका त्यागी स्वरूप आपा अवगाढ चेतनस्वरूप करि भावना । उजडकौ वस्ती मानै है । चेतन वस्तीकौ उजड मानै है । ऐसी भुलि मेटी, चेतना-वस्ती शासती है । जहां वैसे तौ अपना अनंतगुणनिधान न मुसवै । निजधनका धणी परमसाह होय । तब अनंतसुखव्यापारमें अविनाशी नफा होय । अनादि परम आपा मान्या । परकौ ग्रहण कस्त परवस्तुका चोर भया जनमांहि दुःख दण्ड भोगवै है । विवेकराजाका अमल होय परग्रहण चोरी मिटै । तब आप साहपद धरि सुखी होय, तब निजपरिणतिरमणीकरि अपना निजघर थिर करै । अनादि अथिर-पदका प्रवेश था, ताकौ त्यागि अखण्ड अविनाशी पदकौ पहुचै यह साक्षात् शिवमा-

र्गस्वरूपकों । अनुभव यह शिवपद स्वरूपकों, अनुभव त्रिभुवनसार, अनुभव कल्याण अनंत, अनुभव महिमाभण्डार, अनुभव अतुलबोधफल, अनुभव स्वरसरस, अनुभव स्वसंवेदन, अनुभव तृप्तिभाव, अनुभव अखण्डपद सर्वस्व, अनुभव रसास्वाद, अनुभव विमलरूप, अनुभव अचलज्योतिरूप प्रगटकरण, अनुभव अनुभवके रसमें अनंत-गुणकार रस है, पंचपरमगुरु अनुभवतैं भये होंहिगे । अनुभवसौं लगेगे । सकलसंत मंहंत भगवंत तातैं जे गुणवंत हैं, ते अनुभवकों करौ । सकलजीवराशि अनुभवौ स्वरूपकों । यह अनुभवपंथ निरगंथ साधि भगवंत भये ॥

परिग्रहवंत सम्यग्दृष्टिहू अनुभवकों कबहू कवहू करै हैं, तेहू धन्य हैं । मुक्तिके साधक हैं । जा समय स्वरूप अनुभव करै है, ता समय सिद्धसमान अमलान आत्मतत्त्वकों अनुभवै है । एकोदेशस्वरूप अनुभवमें स्वरूप अनुभवकी सर्वस्वजाति पहचानीहै । अनुभव पूज्य है, परम है, धर्म है, सार है, अपार है, करत उधार है, अविकार है, करै भवपार

है, महिमाको धारै है । दोषकों हरणहार है । यातैं चिदानंदको सुधार है ॥

सवैया.

देव जिनेन्द मुनीन्द सवै अनभौरस पीयकै आनंद पायौ ।
केवलज्ञान विराजत है निति सो अनभौरस सिद्ध लखायौ ॥
एक निरंजन ज्ञायकरूप अनूप अखण्ड स्वस्वाद सुहायौ ।
ते धन्य हैं जगमांहि सदैव सदा अनभौ निज आपकों भायौ ॥ १ ॥

अडिल.

यह अनभौ परकाश ज्ञान निज दाय है ।
करि याकौ अभ्यास संत सुख पाय है ॥
यामैं (अनूप अरथ) सदा भवि सरद है ।
कहै दीप अविकार आपपदकों लहै ॥ १ ॥
इति श्रीदीपचंद साधर्मिकृत अनुभवप्रकाश नाम ग्रन्थ संपूर्ण.

अनुभवप्रकाश समाप्त.

